प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

दिसम्बर, 2017

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरन केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयो, नववर्ष और मकर संक्रांति की हार्दिक बधाई हो। हमारी शुभकामनाएं हैं कि नया वर्ष देश में कृषि के लिए नई दिशा और सभी किसानों के लिए समृद्धि और नई रोशनी का वाहक बने। सरकार के लिए गत वर्ष का उत्तरार्ध काफी गहमा–गहमी पूर्ण रहा। किसान सभी महकमों में चर्चाओं के केंद्र में रहे। किसानों की आय दुगुनी करने को लेकर ढेरों बैठकें हुईं, कार्यशालाएँ आयोजित की गईं और कार्य योजनाएँ लगभग तैयार हो गई हैं। कृषि और ग्रामीण विकास ही नहीं, इनसे इतर विभागों में भी चर्चाओं का केंद्र बिंदु और लेखों की शुरूआत ''आय दुगुनी'' करने से होने लगी है। उम्मीद है कि जब देश का इतना बौद्धिक विमर्श इसी मुद्दे पर हो, तमाम आला दर्जे के दिमाग एक साथ मशक्कत करें, तो इस मंथन के परिणामस्वरूप अमृत जरूर निकलेगा।

एक नई बात यह भी देखने को आई है कि कुछ होनहार उच्च शिक्षित युवा, व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी ढूँढ़ने के बजाए कृषि व संबंधित क्षेत्र में अपना स्टार्टअप प्रारंभ कर रहे हैं। उन्हें इस क्षेत्र में मांग और आपूर्ति के बीच का भारी अंतराल दीखता है, और इससे व्यवसाय के क्षेत्र में विशाल संभावनाएँ नजर आती हैं। यदि यह रूझान जारी रहता है तो आने वाले समय में कृषि पर पूँजी और बौद्धिक निवेश बढ़ेगा। यह नया युवा वर्ग कृषि के लिए नई आशा लेकर आया है। यह बदलाव कृषि के लिए सकारात्मक संकेत है, वरना विगत एक–दो दशकों से युवाओं में कृषि के प्रति हो रही विरक्ति ने चिंता उत्पन्न कर दी थी। कृषि सच्चे मायनों में व्यावसायिक तभी हो पाएगी, जब इसमें व्यावसायिकता के तत्वों, जैसे पणधारकों के हितों की सुरक्षा, लाभ कमाने की लालसा, उपभोक्ताओं के प्रति जवाबदेही, पारदर्शिता, नियोजन और अनुशासन का समावेश होगा।

यह भी देखने को आया है कि महानगरों में रहने वाले लोगों में स्वास्थ्यप्रद, गुणवत्तापूर्ण और सुरक्षित सब्जियों व दूध के प्रति जागरुकता बढ़ रही है। यह लोग सुरक्षित तरीके से उगाए जाने वाले अनाज, दालें, सब्जियाँ व अन्य उत्पाद प्राप्त करने के लिए सीधे किसानों से जुड़ रहे हैं, बल्कि उन्हें उचित बाजार भी प्रदान कर रहे हैं। कुछ तो छतों और टैरेस या अन्य छोटे–छोटे उपलब्ध स्थानों में स्वयं गार्डनिंग व सब्जी उत्पादन कर रहे हैं।

साथियो, आपको मालूम होगा कि संस्थान अपने परिसर में फरवरी या मार्च में अपने वार्षिक कृषि मेले का आयोजन करता है। इस वर्ष कृषि उन्नति मेला 9–11 मार्च, 2018 को आयोजित किया जाएगा। तीन दिवसीय मेले के दौरान देश विदेश से सैकड़ों कृषि कंपनियाँ, सरकारी और गैर सरकारी संस्थाएँ अपना स्टॉल लगाएंगी, अपने उत्पाद बेचेंगी। यहाँ तीनों दिन विभिन्न प्रकार के तकनीकी सत्र चलेंगे, विशेषज्ञों के साथ वार्ताएँ होंगी, देशभर से चुनींदा किसानों को सम्मानित भी किया जाएगा और वे अपने अनुभव अन्य किसानों के साथ साझा करेंगे। यह सभी किसान भाइयों के लिए एक सुनहरा मौका है जिसमें भाग लेकर वे कृषि की प्रगति को देख सकते हैं, उन्नत तकनीकों के बारे में जानकारी ले सकते हैं और अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। आप सभी से अनुरोध है कि इस मौके का फायदा उठाएँ और मेले में भाग लेने के लिए आएँ। यहाँ आने वाले किसानों के लिए आवास की व्यवस्था मुफ्त आसपास के

अतिथिगृहों व धर्मशालाओं में की जाती है।

हाल ही में इज़राइल के प्रधानमंत्री श्री नेतन्याहू का भारत दौरा हुआ। इज़राइल ऐसा देश है जहाँ पीने का पानी भी समुद्र के खारे पानी से बनाया जाता है। उन्होंने एक–एक बूंद पानी का उपयोग करके फसल उत्पादन के क्षेत्र में अभूतपूर्व तरक्की की है। इस देश को भी आजादी भारत के साथ ही मिली थी, और इनके सामने परिस्थितियाँ अत्यंत प्रतिकूल थीं लेकिन इसके नागरिकों ने अपनी लगन और जुझारूपन से पूरी दुनिया में अपना लोहा मनवाया है। इज़राइल से तकनीकी और विज्ञान के साथ हमें इनके नागरिकों से अपने देश को आगे बढ़ाने की भावना भी सीखने को मिलेगी।

आगामी ऋतु और कृषि संबंधी आवश्यकता को देखते हुए इस अंक में भी समसामयिक विषयों को शामिल किया गया है। इसमें मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन हेतु मृदा परीक्षण, प्लास्टिक मल्च पर मिर्च की खेती –सफलता की कहानी, कार्बनिक खादों की मृदा गुणवत्ता व उर्वरता में भुमिका, कृषिगत जल उत्पादकता वृद्धि हेतु दक्षतापूर्ण जल प्रबन्धन,गेहूँ की फसल के रोग एवं प्रबंधन, मूंग की उन्नत प्रजातियों का बीज उत्पादन, फसलों का संरक्षण व मूल्यवर्धित उत्पाद, कृषि में वर्षा जल संरक्षण एवं संग्रहण, जैविक खादः विधि, उपयोग एवं लाभ, पोषण सुरक्षा बढ़ाने में दालों की भूमिका एवं प्याज की समेकित नाशीजीव प्रबंधन रणनीतियाँ, पर आलेख प्रकाशित किए गए हैं। आशा है यह आलेख आपके लिए उपयोगी सिद्ध होंगे। हर बार की भांति इस बार भी आपके बहुमूल्य राय और सुझाव आमंत्रित हैं।

संपादक

दिसम्बर 2017

प्रसार दूत

वर्ष 22 2017 अंक

संरक्षक
डॉ. ए.के. सिंह
कार्यवाहक निदेशक

डॉ. जे.पी. शर्मा
संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक
डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक
डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल
डॉ. कन्हैया सिंह
डॉ. आर.एस. बाना
डॉ. नफीस अहमद
डॉ. हरीश कुमार
श्री के.एस. यादव

तकनीकी सहयोग
श्रीमती करुणा दिक्षित
डॉ. वी.एस. सोलंकी
श्री आनन्द विजय दुबे
श्री सुरेन्द्र पाल
श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेलः incharge_atic@iari.res.in

विषय सूची पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन हेतु मृदा परीक्षण 1
2. प्लास्टिक मल्च पर मिर्च की खेती –सफलता की कहानी 9
3. कार्बनिक खादों की मृदा गुणवत्ता व उर्वरता में भुमिका 11
4. कृषिगत जल उत्पादकता वृद्धि हेतु दक्षतापूर्ण जल प्रबन्धन 14
5. गेहूँ की फसल के रोग एवं प्रबंधन 19
6. मूंग की उन्नत प्रजातियों का बीज उत्पादन 22
7. फसलों का संरक्षण व मूल्यवर्धित उत्पाद 29
8. कृषि में वर्षा जल संरक्षण एवं संग्रहण 32
9. जैविक खादः विधि, उपयोग एवं लाभ 38
10. पोषण सुरक्षा बढ़ाने में दालों की भूमिका 42
11. प्याज की समेकित नाशीजीव प्रबंधन रणनीतियाँ 46

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा एक प्रति मूल्य ₹ 20/–

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन हेतु मृदा परीक्षण

विनोद कुमार शर्मा एवं कपिल आत्माराम चोभे
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग
भा. कृ. अनु. प. – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110 012

अधिक उपज क्षमता वाली प्रजातियों के द्वारा पोषक तत्वों का मिट्टी से अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है जो कि मृदा उर्वरता ह्रास का प्रमुख कारण है। आज भारतीय मृदायें बहुपोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर, जस्ता, लौहा, मैंगनीज, बोरोन तथा मोलिब्डेनम) की कमी से ग्रसित हैं विशेष रूप से ऐसे स्थानों पर जहां उर्वरकों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का प्रयोग कम अथवा बिलकुल नहीं किया गया वहां तत्वों की यह कमी बहुत ज्यादा हुई है। यही नहीं, उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग भी इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।

उद्देश्य ?

अधिकांश किसान इस बात का ध्यान नहीं रखते कि जिन उर्वरकों का वे प्रयोग कर रहे हैं वह उचित संतुलित मात्रा में है या नहीं। मृदा में पौधों के लिए जो आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं उनमें से पौधों द्वारा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश को अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है। जिसके कारण इन मुख्य पोषक तत्वों की आपूर्ति उर्वरकों के द्वारा करना आवश्यक होता है। सघन खेती के फलस्वरूप मुख्य पोषक तत्वों के साथ–साथ गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्व भी ग्रहण किए जाते हैं जिससे मृदा में इन तत्वों की उपलब्धता में भी प्रायः कमी आ जाती है जिसकी पूर्ति उर्वरकों, कार्बनिक खादों तथा जैव उर्वरकों के प्रयोग से की जा सकती है। विभिन्न मृदाओं में मृदा के स्वरूप, फसल चक्र, उर्वरकों एवं खादों के प्रयोग के अनुसार उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा भी भिन्न –2 होती है जिसका निर्धारण मृदा परीक्षण द्वारा किया जाता है

सभी खेतों की मृदाओं की उपजाऊ शक्ति एक समान नहीं होती। अतः उर्वरा शक्ति के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करने के लिए प्रत्येक खेत की मिट्टी का परीक्षण अलग से कराना चाहिए।

महत्व

वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर मृदा परीक्षण एवं पादप विश्लेषण की नई–नई तकनीकियां विकसित की जा रही है। जिनके द्वारा मृदा एवं पौधों में आवश्यक तत्वों की मात्राएं तथा उनके अनुपात की जानकारी से पौधों के स्वास्थ्य तथा संभावित उपज का आंकलन किया जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार ही उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों के प्रयोग से लाभ की संभावना बढ़ जाती है। बिना मिट्टी परीक्षण उर्वरकों की मात्रा का प्रयोग पौधों की आवश्यकता से कम होने पर फसल उपज कम मिलती है तथा दूसरी संभावना यह भी रहती है कि आवश्यकता से अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग हो जाए जो आर्थिक दृष्टि से कम लाभकारी तथा पर्यावरण के लिए हानिकारक होता है।

मृदा नमूने के लिए सही तरीका

मिट्टी परीक्षण की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि नमूना कैसे लिया गया है। अच्छा नमूना खेत का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। यदि नमूना ठीक तरह से नहीं लिया गया है तो मृदा परीक्षण के बाद भी या विशेषज्ञों की सिफारिशों के बावजूद भी पूरे लाभ नहीं मिल सकते। फसलों की प्रकृति तथा अन्य उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए नमूने लेने की उचित विधि अपनाई जानी चाहिए, जैसा कि नीचे वर्णन किया गया है।

1. फसलों के लिए मृदा नमूने

अन्न–फसलों (धान, गेहूं, मक्का, बाजरा, ज्वार आदि), तिलहनी फसलों (सरसों, तोरिया, मूंगफली, अलसी आदि), दलहनी फसलों (उड़द, मूंग, अरहर आदि), सब्जियों तथा अन्य फसलों के लिए मृदा नमूना लेने का उचित समय फसल कटने के बाद या फसल बोने से लगभग एक माह पूर्व होता है। खेत में से 15–20 स्थानों से मिट्टी इकट्ठी की जाती है। नमूने की गहराई प्रत्येक स्थान पर 0–6 इंच (0–15 से.मी.) रखी जाती है। अर्थात् ऊपरी सतह से छः इंच गहराई तक की परत ली जाती है।

सामान्यतः मृदा नमूने लेने के लिए, किसानों के लिए सबसे सरल व उपलब्ध औजार खुरपी है। यदि मिट्टी सख्त हो तो इसके लिए बर्मे ऑगर्स का प्रयोग करें तथा ट्यूब ऑगर्स का प्रयोग नरम मिट्टी के लिए किया जा सकता है। विभिन्न स्थानों से ली गई मिट्टी को किसी साफ कपड़े, कागज, पॉलीथीन या फर्श पर एक ढेर बनाकर खूब अच्छी तरह मिलाया जाता है। इसके बाद पूरे ढेर में से लगभग आधा किलोग्राम मिट्टी लेकर एक साफ थैली में रखकर उस पर अपना नाम, पता, नमूना संख्या, फसल विवरण तथा पहचान चिन्ह लिखना चाहिए। यही जानकारी कागज या गत्ते के टुकड़े पर लिखकर थैली के अन्दर भी रख देना चाहिए। इन नमूनों को परीक्षण के लिए मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेज देना चाहिए।

2. बागवानी के लिए मृदा नमूने

फलवृक्ष (बाग) या दूसरे बहुवर्षीय वृक्ष लगाने के लिए गड्ढ़े की विभिन्न गहराई से अलग–अलग नमूना लेने चाहिए। इन गहराई का अन्तराल 0–15, 15–30, 30–45, 45–60, 60–90 तथा 90–120 से.मी. रखना चाहिए। एक एकड़ (या दो एकड़ तक) क्षेत्रफल से 3 या 4 गड्ढ़े बनाते हैं तथा प्रत्येक गड्ढ़े की गहराई का अन्तराल 0–15, 15–30, 30–45, 45–60, 60–90 तथा 90–120 से.मी. रखते हैं। सभी गड्ढ़ों की विभिन्न गहराई की मिट्टी का एक संयुक्त नमूना अलग–2 स्थान पर रखकर अच्छी तरह मिला लेना चाहिए। अर्थात एक गड्ढ़े की विभिन्न गहराई की मिट्टी नमूनों को आपस में न मिलाएं। इस प्रकार विभिन्न गहराई के संयुक्त नमूनों में से लगभग 300 से 400 ग्राम मृदा नमूना ले लिया जाता है। इन नमूनों पर नाम, पता, गहराई, अन्तराल तथा पहचान चिन्ह आदि अवश्य लिख देना चाहिए। अत्यधिक गीली मिट्टी हो तो उसे छाया में सुखाकर ही भेजना चाहिए।

मृदा नमूने के लिए आवश्यक सावधानियॉ :

मिट्टी का नमूना लेते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. हमेशा ध्यान रखें कि नमूने का स्थान वृक्षों के नीचे या फसलों की जड़ों में, गोबर की खाद के गड्ढ़े एवं अलग से किसी गड्ढ़े के पास नहीं होना चाहिए।

2. ढलान, मिट्टी के प्रकार, फसल उत्पादन, फसल चक्र, उर्वरक एवं खाद का प्रबन्धन आदि गुणों के आधार पर अलग–अलग दिखने वाले खेतों या उनके भागों से अलग–अलग नमूने तैयार करने चाहिए, रेह, कल्लर (ऊसर) आदि भागों से अलग–2 नमूना तैयार करें।

3. किसी भी दशा में राख, दवाई, गोबर की खाद तथा उर्वरक, आदि से नमूनों का सम्पर्क नहीं होना चाहिए।

4. केवल साफ, नई थैली, साफ प्लास्टिक की बाल्टी या ट्रे व साफ स्थान का ही प्रयोग नमूनों के लिए करें।

5. यदि मिट्टी गीली हो तो पैंसिल से लेबल लिखकर थैली में रखें।

6. नमूने का पहचान चिन्ह (क्रम संख्या 1, 2, 3 आदि) तथा सिंचाई का साधन, फसल का नाम, नमूने की गहराई आदि भी लेबल पर अवश्य लिखें।

उपयुक्त औजार, स्थान का चुनाव एवं तरीकों को मृदा नमूना के लिए चित्रों में दर्षाया है।

1. औजार

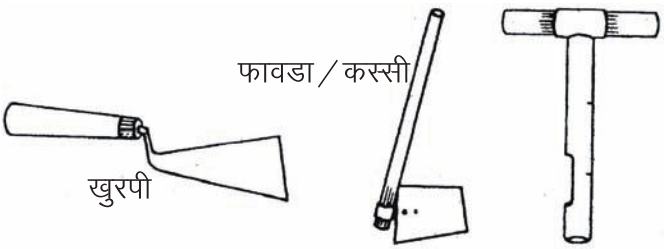

2. स्थान का चुनाव

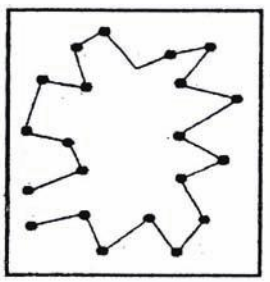

जिगजैग विधि
(टेडे–मेडे चलते हुए पूरे खेत से नमूने लें)

3. मृदा नमूना लेने का तरीका

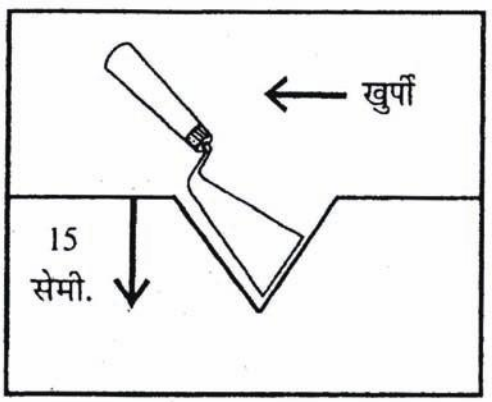

मृदा परीक्षण के परिणामों के अनुसार उर्वरकों की सही मात्रा का निर्धारण

फसलों के उगाने की कृषि तकनीक के साथ–साथ यदि उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण एवं फसल की आवश्यकतानुसार किया जाए तो फसलों की उपज में बढ़ोत्तरी होती है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का संतुलित प्रयोग आर्थिक दृष्टि से उपयोगी होने के साथ–साथ मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न फसलों के लिए उर्वरकों की सही मात्रा के संदर्भ में समय–समय पर वैज्ञानिकों द्वारा उर्वरक संस्तुति की विभिन्न विधियां विकसित की गई है। उनमें से प्रचलित मुख्य विधियां इस प्रकार है।

1. विभिन्न फसलों के लिए सामान्य उर्वरक संस्तुति

इस विधि को विकसित करने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा दशकों पहले देश के विभिन्न भागों, राज्यों एवं विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों की अलग–अलग मात्रा तथा उनके संयोजन के साथ विभिन्न फसलों पर प्रयोग किए गए इन प्रयोगों के फसलों की उपज पर होने वाले प्रभावों व आर्थिक पहलुओं का मूल्यांकन करने के बाद विभिन्न फसलों के लिए सामान्य संस्तुतियाँ विकसित की गई। कुछ प्रमुख फसलों की सामान्य संस्तुतियां तालिका–1 में दी गई है।

तालिका–1: प्रमुख फसलों के लिए सामान्य संस्तुतियां

फसलें	उर्वरक तत्वों की मात्रा (किग्रा./है.)		
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
धान	120	60	40
गेहूँ	120	60	40
गन्ना	150	40	80
मक्का	120	60	40
ज्वार	100	40	40
बाजरा	80	40	40
सरसों	80	40	40
सूरजमुखी	80	60	40
अरहर	25	60	0
चना	25	50	0
मूंग	25	50	0
उर्द	25	50	0
आलू	150	80	80
टमाटर	100	60	60
बैंगन	80	60	60

इन सामान्य संस्तुतियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का अनुपात संतुलित रूप में रखा जाता है। इससे अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

सीमायें

इस विधि का प्रमुख दोश यह है कि इसमें मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है जैसे

- प्रत्येक खेत की उर्वरा शक्ति अलग–अलग होती है, इसलिए उर्वरकों की एक समान मात्रा सभी खेतों में देना उचित नहीं है क्योंकि जिस खेत की उर्वरा शक्ति पहले से ही अधिक हो उसमें एक

समान उर्वरकों के प्रयोग से लाभ कम मिलता है।

- किसी विशेष तत्व की मात्रा किसी खेत में इतनी अधिक होती है कि उसके लिए उर्वरक प्रयोग करने की आवश्यकता बहुत ही कम या बिल्कुल ही नहीं होती है। फिर भी इस विधि से मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर ध्यान न दिए जाने के कारण उस खेत में भी सामान्य उर्वरक संस्तुति के अनुसार उर्वरक की मात्रा का प्रयोग किया जाता है। इस दशा में उस उर्वरक से मिलने वाला लाभ बहुत ही कम हो जाता है तथा खेत में विभिन्न तत्वों की मात्रा का संतुलन बिगड़ जाता है।
- सभी खेत में सामान्य संस्तुति के अनुसार उर्वरकों के प्रयोग से या तो किसी तत्व की मात्रा मिट्टी एवं फसल की आवश्यकता से अधिक हो जाती है या कम रह जाती है। इससे लाभ तो कम मिलता ही है साथ ही खेत की उर्वरा शक्ति पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

यह विधि;

(अ) मध्य उर्वरता वाली मृदाओं के लिए उपयुक्त

(ब) पुरानी किस्मों के लिए उपयुक्त

(स) हाइब्रिड किस्मों के लिए संसोधन की आवश्यकता

2. मिट्टी परीक्षण के परिणामों पर आधारित उर्वरकों की संस्तुति

इस विधि में मिट्टी परीक्षण द्वारा मिट्टी में उपलब्ध जीवांश पदार्थ (कार्बनिक पदार्थ), नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा को निम्न, मध्यम एवं उच्च वर्ग में विभाजित कर लिया जाता है (**तालिका** –2)। इसके आधार पर जिस खेत की उर्वराशक्ति मध्यम वर्ग में होती है उस खेत के लिए उस तत्व की सामान्य संस्तुति में दी गई उर्वरक मात्रा ही प्रयोग की जाती है। अति निम्न एवं निम्न वर्ग में आने वाली उर्वरता के लिए सामान्य संस्तुति का क्रमषः 50 एवं 25 प्रतिषत तक अधिक (मिट्टी में उपलब्ध मात्रा को ध्यान में रखकर) उर्वरक मात्रा की संस्तुति की जाती है। इसी प्रकार अति उच्च एवं उच्च वर्ग में आने वाली उर्वरता के लिए सामान्य संस्तुति का क्रमशः 50 एवं 25 प्रतिशत तक कम उर्वरक की मात्रा की संस्तुति की जाती है। हमारे देश में अधिकतर मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं में यही विधि अपनाई जाती है।

तालिका 2: मिट्टी में उपलब्ध तत्वों का वर्ग निर्धारण

तत्व	निम्न	मध्यम	उच्च
कार्बनिक कार्बन (प्रतिशत)	0.50 से कम	0.50–0.75	0.75 से अधिक
नाइट्रोजन (किग्रा./है.)	280 से कम	280–560	560 से अधिक
फॉस्फोरस (किग्रा./है.)	10 से कम	10–25	25 से अधिक
पोटाश (किग्रा./है.)	120 से कम	120–280	280 से अधिक

इस प्रकार की संस्तुति के समय मिट्टी परीक्षण से ज्ञात उपलब्ध तत्वों की मात्रा को ध्यान में रखा जाता है, अतः उर्वरकों के प्रयोग से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

सीमायें

इस विधि का मुख्य दोष यह है कि इसमें उर्वरक की मात्रा कम या अधिक करने के लिए किसी वैज्ञानिक विधि का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसके अतिरिक्त किसी तत्व की उपलब्ध मात्रा के बड़े अंतराल के लिए एक ही संस्तुति की जाती है। उदाहरण के लिए 120 से 280 किग्रा./है. उपलब्ध पोटाश की मात्रा के लिए गेहूं, धान एवं मक्का की उन्नत प्रजातियों के लिए 40 किग्रा./है. पोटाश तत्व की ही संस्तुति की जाती है जो कि उचित नहीं है।

फसलों हेतु निर्धारित पोषक तत्वों के लिए उर्वरक की मात्रा की गणना

1. डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी.ए.पी.) की मात्रा की गणना

(अ) डाई अमोनियम फॉस्फेट की मात्रा त्र उर्वरक फॉस्फोरस की मात्रा (कि.ग्रा./है.) x 2.17 (कि.ग्रा./हेक्टेयर)

2. यूरिया की मात्रा की गणना

(अ) डी.ए.पी. उर्वरक द्वारा दी गई नत्रजन की मात्रा = डी. ए.पी. की मात्रा (कि.ग्रा./है.) x 0.18

(ब) शेष उर्वरक नत्रजन = फसल के लिए निर्धारित नत्रजन – डी.ए.पी. द्वारा दी गई नत्रजन की मात्रा (कि.ग्रा./है.) की मात्रा (कि.ग्रा./है.) की मात्रा (कि.ग्रा./है.)

(स) शेष निर्धारित नत्रजन के लिए यूरिया की मात्रा की गणना। यूरिया की मात्रा (कि.ग्रा./है.) = शेष निर्धारित उर्वरक नत्रजन की मात्रा x 2.17

3. म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा (एम.ओ.पी.) की गणना

(अ) एम.ओ.पी. की मात्रा (कि.ग्रा./है.) = उर्वरक पोटाश की मात्रा (कि.ग्रा./है.) x 1.67

4. सिंगल सुपर फास्फेट की मात्रा की गणना

(अ) सिंगल सुपर फास्फेट की मात्रा = उर्वरक फॉस्फोरस की मात्रा (कि.ग्रा./है.) x 6.25 (कि.ग्रा./हैक्टेयर)

तालिका 3 विभिन्न रसायनिक उर्वरकों में पोषक तत्वों की मात्रा

रासायनिक उर्वरक	पोषक तत्वों की मात्रा (प्रतिशत)		
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
यूरिया	46	—	—
डाई अमोनियम फॉस्फेट	18	46	—
सिंगल सुपर फास्फेट	—	16	—
म्यूरेट ऑफ पोटाश (एम.ओ.पी.)	—	—	60
कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	25	—	—
अमोनियम सल्फेट	20	—	—
मिश्रित उर्वरक (न. फॉ.तथा पो.)			
12—32—16	12	32	16
17—17—17	17	17	17
10—26—26	10	26	26

नोटः उर्वरक मिश्रण के प्रयोग के समय उससे प्राप्त होने वाले सभी आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा का समायोजन करें

तकनीकी/पद्धति के लाभ

इस पद्धति के मुख्य लाभ निम्नलिखित है।

1. इस पद्धति द्वारा उर्वरकों का संतुलित प्रयोग होने के कारण फसलों से अधिक लाभ मिलता है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनी रहती है जो भविष्य में उगाये जाने वाली फसलों का उच्च उत्पादन बनाये रखने में मदद करती है।

2. फसल की आवश्यकतानुसार मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों के आधार पर उर्वरकों का उचित प्रयोग किया जाता है।

3. इस पद्धति को अपनाने से किसान अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार तथा बाजार में उर्वरक की उपलब्धता के अनुसार निम्न एवं उच्च लक्ष्य निर्धारित कर अधिक से अधिक लाभ ले सकते हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि फसल की लक्षित उपज कभी भी प्रजाति की उपज क्षमता का 90 प्रतिशत से अधिक न हो।

4. इस पद्धति द्वारा संतुलित मात्रा में उर्वरकों का निरन्तर प्रयोग करते रहने से मृदा उर्वरता में निरन्तर वृद्धि होती रहती है जिससे निर्धारित लक्षित उपज प्राप्त करने के लिए आवश्यक उर्वरकों की मात्रा में निरन्तर कमी होती जाती है। जिससे अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त होता है।

मिट्टी में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों की निर्णायक सीमा के आधार पर सूक्ष्म उर्वरकों की संस्तुति

फसल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों (लोहा, मैंगनीज, जस्ता, तांबा, बोरोन एवं मोलिब्डेनम) का उतना ही महत्व होता है तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालती है। चूंकि फसलों को इन तत्वों की आवश्यकता कम मात्रा में होती है इसलिए इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं। इनकी अधिक मात्रा का प्रयोग फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। अतः इनके प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिए। इनका प्रयोग तभी करना चाहिए जब मिट्टी में इनकी कमी हो। इस संदर्भ में प्रयोगों द्वारा विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की मिट्टी में

उपलब्ध निर्णायक सीमा ज्ञात की गई है। यदि सूक्ष्म तत्वों की मात्रा निर्णायक सीमा से कम हो तो इनके उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए उर्वरकों की संस्तुति सारणी–4 में दी गई है।

तालिका 4 मिट्टी में उपलब्ध सूक्ष्म तत्वों की निर्णायक सीमा एवं सूक्ष्म तत्वों के उर्वरकों की संस्तुति

तत्व	उपलब्धता की निर्णायक सीमा (मिली.ग्रा./कि.ग्रा.)	सूक्ष्म तत्वों वाले उर्वरकों की मात्रा (कि.ग्रा./है.)	उर्वरक का नाम एवं प्रयोग
लोहा*	4.5 (डी.टी.पी.ए. निष्कर्षित)	50 –100	फैरस सल्फेट मृदा उपयोग
	2.0 (डी.टी.पी.ए. निष्कर्षित)	(5–15 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.)	1 – 3 प्रतिशत फैरस सल्फेट के दो से तीन स्प्रे 10 दिन के अन्तराल पर
मैंगनीज*	?	50	मैंगनीज सल्फेट मृदा उपयोग
	?	(5 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.)	1 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट के दो से तीन स्प्रे 15 दिन के अन्तराल पर
जस्ता	0.6 (डी.टी.पी.ए. निष्कर्षित)	25	जिंक सल्फेट मृदा उपयोग मध्यम गठन वाली मृदा के लिए दो वर्ष में एक बार
		50	जिंक सल्फेट मृदा उपयोग भारी गठन वाली मृदा के लिए
		2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट + 1.25 कि.ग्रा. चूना प्रति 500 लीटर पानी प्रति है।	0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूना दो – तीन छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर; 500 लीटर पानी प्रति है।
तांबा	0.2 (डी.टी.पी.ए. निष्कर्षित)	4	कॉपर सल्फेट मृदा उपयोग
		0.125 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है।	0.025% कॉपर सल्फेट दो – तीन छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर ;500 लीटर पानी प्रति है।
बोरोन	0.5 (गर्म जल विलयशील)	10	बोरेक्स मृदा उपयोग
		1 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है।	0.2 प्रतिषत बोरिक एसिड या सोल्यूबॉर के दो से तीन पर्णीय छिड़काव
मोलिब्डेनम**	0.2 (एसिटिक अमोनियम ऑक्जेलिक निष्कर्षित)	2–3	अमोनियम मोलीब्डेट
		0.5 –1.5 कि.ग्रा. अमोनियम मोलिब्डेट प्रति 500 लीटर पानी प्रति है।	0.1–0.3 प्रतिषत अमोनियम मोलिब्डेट दो –तीन बार 10 दिन के अन्तराल पर

*फसल पर छिडकाव मृदा उपयोग की अपेक्षा अधिक लाभकारी पाया गया है।

**बीज उपचार / 50–100 ग्रम मोलिब्डेनम अत्यधिक उपयोगी है।

फसलों का चयन : फसलों का चयन करने से पहले मृदा की लवणीयता की समस्या के लिए मापदण्ड तालिका 5 में निर्धारित किए गए इन मापदण्ड के अनुसार फसलों का चयन सुनिश्चित कर सकते है।

तालिका– 5: मृदा लवणता वर्ग और पादप वृद्धि

मृदा लवणता वर्ग	मृदा संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)	पौधों पर प्रभाव
अलवणीय	0–2	लवणता प्रभाव नगण्य
अल्प लवणीय	2–4	संवेदी फसलों का उत्पादन सीमित
सामान्य लवणीय	4–8	मध्यम संवेदी फसलों का उत्पादन सीमित
अधिक लवणीय	8–16	केवल लवण सहनशील फसलों का उत्पादन संभव
अत्यधिक लवणीय	16 से अधिक	अत्यधिक लवण सहनशील फसलें ही संभव

तालिका–5 के अनुसार फसलों का चयन लवण सहनशीलता के आधार पर दो समूहों मे रखा गया है (1) संवेदी समूह (2) सहनशील समूह

संवेदी समूह		सहनशील समूह	
अति संवेदी फसलें	**मध्यम संवेदी**	**मध्यम सहनशील**	**अति सहनशील**
मसूर	मूली	पालक	जौ
उड़द	लोबिया	गन्ना	धान (रोपित)
चना	बांकला	सरसों	कपास
सेम	बंदगोभी	धान	चुकन्दर
मटर	फूलगोभी	गेहूं	शलजम
गाजर	खीरा	जई	तम्बाकू
प्याज	टमाटर	पैराघास	कुसुम
नींबू	शकरकन्द	सूडान घास	तारामीरा
संतरा	ज्वार	बाजरा	करनाल घास
अंगूर	बाजरा	अल्फा–अल्फा	खजूर
आडू	मक्का	अमरूद	बेर
अलूचा	वनमेथी, बरसीम	अनार, अकेशिया	कैजुरीना
नाशपाती	वेच		
सेब	कद्दू		

फसलों के लिए उपयुक्त पी. एच. मान

मृदा पी एच मान ज्ञात होने पर हमें फसलों के लिए मृदा द्वारा पोषक तत्वों की उपलब्धता के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है कि कौन–कौन से पोषक तत्वों की फसलों को प्राप्यता कम या अधिक हो सकती है। तथा हमारे खेत कौन सी फसलों को उगाने के लिए अत्याधिक उपयुक्त है।

तालिका–5: विभिन्न फसलों के लिए उपयुक्त पी. एच. मान

फसलें	उपयुक्त पी एच मान
मक्का, गेहूं, जौ, ज्वार, बरसीम, गन्ना, सरसों, टमाटर	6.0–7.5
चावल, चाय, आलू, कपास, मूंगफली, मटर, मसूर, चना, सोयाबीन, जई, लोबिया	4.0–6.0
तम्बाकू, अरहर, मूंग, उड़द	5.0–7.0
खजूर, फालसा, करौंदा, बबुल, बेर	8.5 से अधिक

मृदा अभिक्रिया (पी एच मान) से पादप पोषकों की प्राप्यता प्रभावित होने के कारण पादप वृद्धि भी प्रभावित होती है। अत्यधिक कम या अधिक पी एच मान पर मृदा की भौतिक दषाएं भी खराब हो जाती है जो पादप वृद्धि को प्रभावित करती है।

तालिका–6: मृदा का पी एच मान व पोषक तत्वों की उपलब्धता

पोषक तत्व	पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए उपयुक्त पी. एच. मान
नाइट्रोजन	5.5–9.0
फास्फोरस	6.0–7.0
पोटेशियम	6.0 से अधिक
गंधक	5.5 से अधिक
कैल्शियम एवं मैग्नीशियम	6.0–8.5
लौहा, मैग्नीज, जस्ता, तांबा	7.0 से कम
बोरॉन	5.0–7.0 और 8.5 से अधिक

सारांश

मृदा परीक्षण से किसानों को मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों तथा उनके आपसी संतुलन की जानकारी प्राप्त होती है। यदि आधुनिक कृषि प्रणाली में मृदा परीक्षण के उपरान्त संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करता है ऐसी स्थिती में अच्छी गुणवत्ता वाली एवं उत्तम फसल पैदावार प्राप्त होती है तथा उर्वरकों के उपयोग से पूर्ण लाभ लिया जा सकता है मृदा उर्वरा शक्ति को निरन्तर बनाये रखने में उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग सहायक सिद्ध होता है। मृदा परीक्षण के बाद संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग पर्यावरण समबन्धित समस्याओं से मुक्ति दिला सकता है जैसै–जल प्रदूषण (पानी में नाइट्रेट, क्लोरीन फ्लोराइड इत्यादि का होना), वायु प्रदूषण पानी (हानिकारक गैसों का होना एवं तापक्रम में बढोत्तरी इत्यादि) एवं जलवायु परिवर्तन।

प्लास्टिक मल्च पर मिर्च की खेती –सफलता की कहानी

मुकुल कुमार, प्रदीप कुमार द्विवेदी, स्वप्निल दुबे एवं विमल नैन
कृषि विज्ञान केन्द्र, रायसेन (म.प्र.)

जगदीश पाल पुत्र श्रीराम सिंह ग्राम बहेड़िया, विकास खण्ड सॉची, जिला रायसेन, म0प्र0 के मूल निवासी एक छोटे किसान हैं, जिनके पास मात्र 2 एकड़ भूमि है। जगदीश जी के परिवार में 7 सदस्य हैं, जिनका निर्वाह इस 2 एकड़ भूमि पर ही निर्भर हैं। अपनी पैतृक भूमि पर सब्जी लगाना एवं स्वयं उन सब्जियों को बेचना उनका मुख्य कार्य है, लेकिन पारंपरिक तरीके से सब्जी लगाना एवं उसके उत्पादन से होने वाले आर्थिक लाभ से जगदीश जी अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहे थे। इसी बीच वह कृषि विज्ञान केन्द्र, नकतरा, रायसेन के सम्पर्क में आये और प्लास्टिक मल्च पर मिर्च की खेती के बारे में जानकारी ली। जगदीश पाल ने सन् 2015–16 में 1 एकड़ भूमि पर प्लास्टिक मल्च पर मिर्च की खेती की, जिससे उन्होंने ₹108,550 का शुद्ध लाभ कमाया।

हरी मिर्च में विटामिन–सी प्रचुर मात्रा में होने के कारण अब लोगों में हरी मिर्च को लाल व सूखी मिर्च की जगह सब्जी बनाने में एवं सलाद के रूप में उपयोग करने का चलन बढ़ता जा रहा है। परन्तु हरी मिर्च की खेती में कीट एवं व्याधियों के प्रकोपों के कारण होने वाली क्षति एवं उसकी रोकथाम में आने वाली लागत को देखते हुए प्लास्टिक मल्च तकनीक किसानों के लिये एक वरदान साबित हो रही है।

मिर्च की खेती हेतु जलवायु : मिर्च गर्म मौसम की फसल है जिसे 18–32 डिग्री.से. तापमान की आवश्यकता होती है।

मिट्टी : मिर्च की अच्छी फसल एवं उपज के लिये रेतीली दोमट या दोमट मिट्टी जिसका पी.एच.– 6.5–7.5 हो और जिसमें मध्यम नमी व गोबर की खाद हो उचित मानी जाती है।

किस्म : ज्वाला

बीज बुवाई का समय एवं मात्रा : गर्मी वाली फसल के लिए दिसम्बर–जनवरी के माह में करनी चाहिए। 200–300 ग्राम बीज/हेक्टेयर प्रो–ट्रे तकनीक से आवश्यकता पड़ती है।

पौध तैयार करना :– सब्जियों की पौध प्रो–ट्रे तकनीक से तैयार की जा सकती है।

1. प्रो–ट्रे तकनीक को अपनाकर

पौध रोपण के लिए बेड तैयार करना:– 80–90 सेमी. चौड़ी, 10–12 सेमी. उठी हुई बैड तैयार कर लें। 80–90 सेमी. चौड़ी बेड पर एक पाइप से दूसरे पाइप के बीच की दूरी को 50 सेमी. रखते हुए बेड पर दो पाइपों को बिछाते है। पाइपों के ऊपर से प्लास्टिक मल्च जिसकी मोटाई 25–40 माइक्रोन हो बिछा देते है और किनारों पर अच्छी प्रकार मिट्टी की सहायता से दबा देते है।

खाद एवं उर्वरक: 60–70 कु0 सड़ी गोबर की खाद बेड बनाने से पहले खेत में मिला देनी चाहिए।

पौध रोपण व अंतराल: जब पौधा 20–25 दिन या

क्र. स.	उर्वरक डालने का समय	नाइट्रोजन (किग्रा0/एकड़)	फास्फोरस (किग्रा0/एकड़)	पोटाश (किग्रा0/एकड़)
1	बुवाई पूर्व (बेसल)	24	10	6
2	पहली खुराक	12	3	4
3	दूसरी खुराक	12	3	4
4	तीसरी खुराक	12	2	4
5	चौथी खुराक	12	3	3
6	पांचवी खुराक	12	3	3

12–15 सेमी. लम्बाई का हो जाये, तब पौधा रोपाई योग्य हो जाता है। प्लास्टिक मल्च पर छिद्र करने के दो तरीके होते हैं।

1. ब्लेड की सहायता से मल्च को काटना।
2. लोहे या स्टील के गिलास को गर्म करके।

सिंचाई : गर्मी के दिनों में 1–2 दिन के अंतराल पर तथा ठण्ड के समय 3–4 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज : प्लास्टिक मल्च पर हरी मिर्च की उपज 60–80 कु0/एकड़ तक ली जा सकती है।

पौध संरक्षण

(अ) रस चूसक कीट : थ्रिप्स, माहू, सफेद मक्खी, मकड़ी, फल छेदक, तथा कटुआ इल्ली।

- **प्रबंधनः** इमीडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल या डायमिथोएट या एसीटामिप्रिड 20 एस.पी. या स्पाइरोमेसिफेन स्पाइनोसेड एक ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- **रोगः** आर्द्रगलन, ऐन्थ्रेक्नोज, उकठा रोग, फल गलन, पर्ण कुंचन, जीवाणु पत्ती धब्बा ।

प्रबंधन :–

- कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2.5 ग्राम प्रति लीटर या कार्बेन्डाजिम एक ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- 10 दिन के अंतर पर मैनकोजेब या मेटालेक्सिल (0.25:) का छिड़काव करना चाहिए।
- रोग के प्रकोप की अवस्था में स्ट्रेप्टोमाइसिन 2 ग्राम प्रति 15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- डायमिथोएट की 2 मि.ली. मात्रा को प्रति लीटर पानी या इमीडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 5 मि. ली. मात्रा 15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

आय–व्यय का विवरण/एकड़ (₹)

जुताई	800
क्यारी बनाना	250
खाद एवं उर्वरक	6000
बीज	3000
पौध तैयार करना	400
ड्रिप सिंचाई	20000
प्लास्टिक मल्च	16000
कुल मजदूर (40)	8000
कीटनाशक + फफूंदनाशक	2000
अन्य खर्च	5000
कुल खर्च	61450
कुल उत्पादन	**68 कु0**
कुल आय (25 ₹/किग्रा0)	₹ 1,70,000
शुद्ध लाभ	**108,550**

कार्बनिक खादों की मृदा गुणवत्ता व उर्वरता में भुमिका

सुरेश कुमार ककरालिया,
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विष्वविद्यालय, हिसार
*Corresponding Author: kakraliyask@gmail.com

प्राकृतिक संसाधानों से प्राप्त वे सभी खादें जिसमें सभी तत्व उवस्थित होते है जो पौधो की वृद्धि व विकास के लिए आवश्यक है तथा मृदा के भौतिक, रासयनिक तथा जैविक गुणों को प्रभावित करते है कार्बनिक खाद/पदार्थ कहलाते है। इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से नीचे सारणीबद्ध है। ह्यूम्स भी मृदा कार्बनिक पदार्थ का एक महत्वपूर्ण अंश है। जो इसके सड़ने गलनें पर मृदा में रह जाता है। कोई भी कार्बनिक पदार्थ जो मृदा में मिलाया जाता है। मृदा कार्बनिक पदार्थ कहलाता है इस प्रकार ह्युम्स एक कार्बनिक पदार्थ है। पर समस्त कार्बनिक पदार्थ ह्यूम्स नहीं हो सकते हैं। यह जटिल यौगिकों का एक मिश्रण है जो गहरें बादामी रंग के अनेक अक्रिस्टलीय कोलाइडी पदार्थों का संकीर्ण एवं रोधक मिश्रण है जो मूल उत्तकों से रूपान्तिरित या मृदा जीवों के द्वारा संश्लेषित है ।

कार्बनिक खादों का वर्गीकरण

क.स.	स्थूल कार्बनिक खादें	उपस्थित पोषक तत्व (प्रतिशत)		
		नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
1	गोबर की खाद	0.5	0.3	0.5
2	कम्पोस्ट की खाद	1.0	0.5	1.5
3	हरी खाद	0.7	0.2	0.6
4	मलमूत्र की खाद	0.4 से 1.35	0.5 से 1.0	0.5 से 2.0
5	कुक्कुट की बिछावन	3.0	2.5	1.5
6	भेंड़ की मेगंना	3.0	1.0	2.0
7	मानव का विस्टा (खाद)	5.2	4.0	2.0
	सान्द्रति कार्बनिक खादें			
1	मूंगफली की खाद	7.3	1.5	1.3
2	नीम की खली	5.22	1.08	1.48
3	अरण्ड़ी की खली	4.37	1.85	1.39
4	महुआ की खली	2.51	0.80	1.85
5	करंज की खली	3.97	2.0	1.5
6	कपास की खली			
	प्राणीजात खाद			
1	हडड़ी का चूरा	3.0	20.0	
2	मछली की खाद	7.0	6.0	1.0
3	सूखा हुआ खून की खाद	10.0	1.5	1.0

गोबर की खादः गोबर की खाद का प्रयोग हम प्राचीन काल से मृदा उर्वरता व मृदा स्वास्थ्य सुधार के रूप में करते आ रहे है। यह घरेलु (गाय, भैस, भेड़, बकरी) के ठोस तथा द्रव मलमूत्र से सन्नी बिछावन (पुआल, भूसा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ आदि।) को गडड्ो सड़ा कर तैयार किया जाता है। इसको खेत में बुवाई के एक माह पूर्व डाल कर मिटट्ी पलटने वाले हेरो से जुताई कर अच्छी तरह मिला देना चाहिए। जिससे ये मृदा में वायु संचार को बढ़ाता है। जिसके फलस्वरूप मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव या जीवाणु की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। जो खाद सड़ाने में मदद करते हैं। साधारणतया सभी फसलों में 10 से 15 टन व सब्जियों में 20 से 25 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद प्रयोग में लेते है।

कम्पोस्टः कम्पोस्टिंग एक जैवरासायनिक क्रिया है जिसमें वायुवीय तथा अवायुवीय जीवाणु कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर बारीक खाद बनाते है। यह पूर्ण सड़ा हुआ कार्बनिक पदार्थ ही कम्पोस्ट है। सामान्यतः फसलों में 10 से 15 टन तथा सब्जियों में 20 से 25 टन प्रति हैक्टर बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व खेत में डाल कर कृषि कार्य करना चाहिए जिससें यह घीरें–धीरे सड़ गल कर पौधों को आवश्यक पोषक तत्व तथा पौधों की उपापचय क्रियाएं करते हैं। जिससे मृदा स्वास्थ्य सुदृढ व कायम रहता है।

वर्मीकम्पोस्टः प्रकृति ने केचुओं को अद्भूत क्षमता प्रदान की है जो कृषि अपशिष्ट को पचा कर उत्तम किस्म का कम्पोस्ट बनाते हैं। केंचुए के अपशिष्ट मल, उनके कोकून, सभी प्रकार के लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व और विघटित जैविक पदार्थों का मिश्रण ही वर्मी कम्पोस्ट है। इस कम्पोस्ट में एक्टीनोंमाइसिटीज की मात्रा गोबर की खाद की तुलना में आठ गुना अधिक पायी जाती है। इसके एन्टीबायोटिक गुणों से फसलें कीट व बीमारियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी हो जाती है। आइसीनीया फोईटिड़ा प्रजाति के केंचुए सबसे अधिक वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयुक्त है। जो 90 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ तथा 10 प्रतिशत मिटट्ी ही खाते हैं। वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग विभिन्न खाद्यान फसलों में 5 से 6 टन, सब्जियों में 8 से 10 टन प्रति हैक्टर तथा फल वृक्ष में एक दो कि.ग्रा. प्रति पौधा शुरूआती अवस्था में करते है।

यह मृदा स्वास्थ्य, गुणवत्ता तथा उर्वरकता को निम्न प्रकार से प्रभावित करता है।

1) वर्मी कम्पोस्ट देशी खाद की तुलना में अधिक श्रेष्ठ किस्म का होता है जिसमें गोबर की खाद की तुलना में अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते हैं।

2) इसमें एक्टीनोंमाइसिटीज की मात्रा गोबर की खाद की तुलना में आठ गुना अधिक पायी जाती है। इसके एन्टीबायोटिक गुणों से फसलें कीट व बीमारियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी हो जाती हैं तथा साथ ही उर्वरकता में वृद्धि होती है।

3) वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से मृदा में जल धारण क्षमता बढ़ जाती है तथा मृदा कटाव भी रूकता है।

4) केंचुए आक्सीन नामक हार्मोन का स्राव करते हैं जो पौधों की वृद्धि तथा रोगरोधी क्षमता बढाता है।

5) इससे खेत में ह्युम्स की मात्रा बढ़ती है।

हरी खादः दलहनी या अदलहनी फसलों को हरी अवस्था में (पुष्पावस्था) मृदा में जीवांश पदार्थ एवं पोषक तत्व की मात्रा बढ़ाने के उद्देश्य से खेत में जुताई कर दबाने प्रक्रिया को ही हरी खाद कहते हैं। इसके उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। जैसे ढेंचा, ग्वार, मूंग, सनई।

दलहनी फसलों में फॉस्फोरस की उपस्थित में राइजोबियम जीवाण अधिक क्रियाशील रहते हैं। अतः नाइट्रोजन का स्थरीकरण अच्छी प्रकार होता है। जिससे पौधे नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में गृहण करता है। इस कारण ही दहलनी फसलों में नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की कम आवश्यकता होती है।

हरी खाद के लिए पौधों के आवश्यक गुण

1) इसके लिए फसल से शीध्र बढ़ने वाली होंनी चाहिए तथा पत्तियों व शाखाओं की संख्या भी अधिक हों जिससे प्रति हैक्टर अधिक से अधिक कार्बनिक पदार्थ मिल सके।

2) दलहनी पौधों की जड़ों में ग्रन्थियां होने के कारण राइजोबियम द्वारा वायुमण्ड़ल नाइट्रोजन का मृदा में स्थरीकरण हो सके।

3) हरी खाद से मिटट्ी भूर–भूरी बन सके और मृदा में गहराई से पोषक तत्व ग्रहण कर पौधो में संचित कर सके।

4) फसलों में कीटों व बीमारियों का प्रकोप कम हो तथा

खाद उर्वरक की आवश्यकता भी ज्यादा न हो।

खली की खादः तिलहनों से तेल निकालनें के बाद जो अपशिष्ट पदार्थ बच जाता है उसे खली कहते हैं। जब इसे खाद के रूप में खेत में प्रयोग करते हैं तो इसे खली की खाद कहतें हैं। यह सान्द्रति कार्बनिक खादों के वर्ग में आती है। इसमें गोबर की खाद व कम्पोस्ट की तुलना में नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पाया जाता हैं।

अरण्ड़ी की खली दीमक की रोकथाम के साथ कीटनाशक का भी कार्य करती है। ये एक से दो टन प्रति हैक्टर फसल बुआई के दो सप्ताह पूर्व चूर्ण बना कर खेत में डालते हैं तथा नीम की खली में अजेड़ीरेक्टीन नाम रसायन पाया जाता है। जो मृदा में कीटनाशक का कार्य भी करता है।

प्राणी जात–खादः इसमें सभी प्राणी (जीव–जन्तु), हडड्री का चुरा, मछली की खाद, सूखा हुआ खून से प्राप्त खाद जिसमें नाइट्रोन, फॉस्फोरस अधिक मात्रा में तथा पोटाश कम मात्रा में उपस्थित होता है।

कार्बनिक पदार्थ तथा ह्युम्स का मृदा की गुणवत्ता व उर्वरता पर किस प्रकार से प्रभाव होता है। जो निम्न प्रकार है।

भौतिक प्रभावः 1. मोटे कार्बनिक पदार्थ से मृदा पर गिरने वाली वर्षा की बुन्दों का असर कम हो जाता है। और मृदा में जल आसानी से रिस जाता है। इस प्रकार मृदा सतह से जल का बहाव तथाा कटाव भी कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप मृदा में जल को धारण करने की क्षमता तथा पोधों को वृद्धि के लिए जल उपलब्धता बनी रहती है।

2. कार्बनिक पदार्थ के सड़ने–गलनें से मृदा कणों को आपस में बांध कर बड़े कण समूह में बदल कर मृदा को दानेदार या भुरभुरी बना देते है।

3. यह मृदा सतह पर मलच के समान कार्य भी करता है। और मृदा को गर्मी–तथा सर्दी में गर्म रखता है जिसे पादप जड़ों की अच्छी वृद्धि होती है।

4. ह्युम्स मृदा की प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाता हैं जिससे मृदा में अम्लता क्षारता की वृद्धि रूक जाती है।

5. छोटें तथा मोटे कार्बनिक पदार्थ (घास तथा पत्तियाँ) मृदा सतह पर बिछे रहने से वायु द्वारा मृदा की ऊपरी सतह से उर्वर मृदा को वायु बहाव से रोकता है।

रासायनिक प्रभावः

1. कार्बनिक पदार्थों के सड़नें–गलनें से पौधों को सभी आवश्यक पोषक तत्व विभिन्न मात्रा में उवलब्ध होते हैं। तथा मृदा आवश्यक पोषक तत्वों का विशाल भण्डार होता है। पौधों की वृद्धि व विकास के लिए तथा सम्पूर्ण जीवन चक्र पूर्ण करने के लिए विशेष पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। जिसके बिना पौधा अपना जीवन चक्र पूर्ण नही कर पाता है। इसके लिए मृदा में सूक्ष्म जीवों की प्रतिक्रिया के फलरूवरूप इसके विच्छेदन होने से अमोनिया तथा कार्बन डाईआक्साइड़ गैसों का उत्पादन होता है। तथा अमोनिया नाइट्रीकरण क्रिया के फलस्वरूप नाइट्रेट में बदल जाती है। जिससे पौधे नाइट्रोजन की पूर्ति करते है।

कृषिगत जल उत्पादकता वृद्धि हेतु दक्षतापूर्ण जल प्रबन्धन

रणबीर सिंह, अनिल कुमार मिश्रा एवं मान सिंह
जल प्रौद्योगिकी केन्द्र, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली

भारत में कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए समुचित मात्रा में, सही समय पर सुनिश्चित् जल उपलब्धता एक महत्वपूर्ण कारक है। मानसून की असमायताओं के दुष्प्रभावों के कारण कृषि में एक अनिश्चितता सदैव बनी रहती है। अभी तक तो भारत को अधिक जल संसाधनों का वरदान प्राप्त है लेकिन सिंचाई हेतु उपलब्ध जल में लगातार कमी हो रही है। कृषि में सिंचाई हेतु समग्र उपयोग क्षमता का लगभग 84 प्रतिशत (7.5 मिलियन घन मीटर) प्रयुक्त होता है। उत्तम गुणवत्तापूर्ण इसके बावजूद भी लगभग 50 प्रतिशत कृषि क्षेत्रफल वर्षा आधारित अथवा वर्षा पोषित जहाँ पर कृषि की स्थिति उत्तम है। बिना निश्चित जल उपलब्धता के कहीं पर भी कुछ भी पैदा कर पाना लगभग असम्भव है। इस हेतु यद्यपि अनेक तकनीकियाँ विकसित की गई हैं, और कुछ तकनीकियाँ किसानों द्वारा अपनाई भी जा रही हैं, तथापि उत्तम तकनीकियों के विस्तार की महती आवश्यकता है। सन् 2025 ई. तक विभिन्न क्षेत्रों जैसे घरेलू, औद्योगिकी और विद्युत उत्पादन से तीक्ष्ण स्पर्धा के कारण सिंचाई हेतु उपलब्ध जल में 73 प्रतिशत तक गिरावट का अनुमान है। भोज्य पदार्थों के उत्पादन के लिए जल की माँग जलापूर्ति की अपेक्षा बहुत अधिक हो जायेगी। इस लिए समय की माँग है कि टिकाऊ व अधिक कृषि उत्पादन हेतु जल प्रबंधन की दक्षतापूर्ण तकनीकों का प्रयोग किया जाए। जिससे न केवल जल का दक्षतापूर्ण प्रबंधन है, लाभ में वृद्धि हो बल्कि बाकी बचा हुआ जल अन्य फसलों के लिए या अन्य व्यक्तियों के लिए प्रयोग से कार्य हो सकें।

टपकदार (ड्रिप) सिंचाईः जल प्रयोग की एक दक्षतापूर्ण विधि

जल की बचत, पैदावार में वृद्धि एवं जल उपयोग दक्षता के आधार पर सतही सिंचाई विधियों की तुलना में ड्रिप सिंचाई प्रणाली एक अधिक दक्ष तकनीक है। इस तकनीक के अनेक लाभ हैं जिसमें कुछ निम्न हैंः

- सिंचाई के साथ पोषक तत्वों का प्रयोग।
- उपलब्ध जल व पोषक तत्वों का दक्षतापूर्ण प्रयोग।
- मृदा एवं भू–जल का स्वास्थ्य।
- अधिक फसल उत्पादकता एवं उन्नत गुणवत्ता।

ड्रिप सिंचाई के उपयोग

औद्योगिक फसलें जैसे अंगूर, नीबूवर्गीय फसलें, सेब, अनार, नाशपाती, स्वादिष्ट फल (आड़ू, खुबानी, आलूबुखारा इत्यादि), सूखे मेवे (बादाम व पिस्ता), केला, खजूर, जैतून, अमरूद इत्यादि

सब्जियाँ–टमाटर, हरी मिर्च, खीरा, लेट्यूस, हरी मटर, गोभी, भिंडी इत्यादि। कतार वाली फसलें–कपास, गन्ना, मक्का, मूँगफली तथा प्याज। अन्य बेर प्रजातियाँ, खरबूजा प्रजातियां, अल्फालफा, फूल और अन्य सजावटी पौधे इसके अतिरिक्त आम जल ड्रिप लगभग सभी फसलों में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। उपसतही ड्रिप सिंचाई प्रणाली सतही ड्रिप सिंचन प्रयोग से अधिक आय प्राप्त की जा रही है।

धान में जल उत्पादकता वृद्धि हेतु एरोबिक विधि

इस विधि में धान के बीज को गेहूँ की तरह ही खेत तैयार कर सीधे खेत में बो दिया जाता है। जिससे खेत में कद्दू (पड़लिंग) करने एवं पौधे उगाने पर खर्च होने वाले 200–300 मि.मी. जल की सीधी बचत हो जाती है। इस विधि द्वारा धान की बुवाई समय पर हो जाने के कारण अगली फसल गेहूँ के लिये समय से खेत भी खाली हो जाता है। धान उगाने की इस विधि में अल्प एवं मध्यम अवधि में पकने वाली प्रजातियों का चुनाव किया जाता है। जो कि शीघ्र पकती एवं खरपतवारों के साथ अच्छी स्पर्धा करने की क्षमता रखती हों। पूसा सुगन्ध–3 और 4, पूसा

संकर धान–10 एवं प्रो–एग्रो 6111 ऐसी ही प्रजातियाँ हैं जो कि शुरुआत में उगी खरपतवारों की पहली खेप को अच्छी स्पर्धा देती हैं। इन प्रजातियों का 30–40 कि.ग्रा. बीज एक हेक्टेयर खेत की बुवाई हेतु पर्याप्त होता है। अच्छे अँकुरण हेतु बीज को खेत में 3 से 4 सें.मी. की गहराई पर गिराना व मिट्टी से भली–भांति ढ़कना आवश्यक होता है। शुरूआत में ही जल की भी बचत कर लेने से जल की उत्पादकता में आशातीत वृद्धि देखी गई है।

इस विधि से उगाये गये धान के खेतों में खरपतवारों की समस्या प्रमुख होती है अतः बुवाई के तुरन्त बाद पेण्डीमिथेलीन को तीन लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से खेत में 25 दिन तक घास कुल के खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु 2, 4–डी का 500 ग्राम ए. आई. प्रति हेक्टेयर का प्रयोग बुवाई के 21 दिन बाद करना लाभदायक होता है। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग स्थान विशेष हेतु की गई सिफारिशों के अनुसार करना उचित होता है। आवश्यकता से अधिक नत्रजनीय उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अँकुरण के बाद पहली सिंचाई में 7 से 10 दिन की देरी की जा सकती है। जिससे जड़ें गहराई तक चली जाती हैं। कल्लों के फुटाव के समय जल अत्यन्त ही आवश्यक होता है। इसके अलावा वर्षा के अनुसार बदलाव लाते हुये 7 से 10 दिन के अन्तराल से सिंचाई कर 30 से 40 प्रतिशत पानी की बचत के साथ–साथ धान की अच्छी पैदावार (4–4.5 टन प्रति हेक्टेयर) ली जा सकती है। कहीं कहीं पर लौह तत्व (आयरन) की कमी होने की शिकायत आ सकती है। ऐसी स्थिति में फेरस सल्फेट का घोल पत्तियों पर छिड़का जा सकता है।

जल ग्रहण क्षेत्रों के जल संसाधनों का आंकलन तथा उपयोग

जल संसाधनों का आंकलन तथा अनुप्रयोग हेतु भू–स्थैतिक चारित्रीकरण एवं सभी स्रोत्रों से उपलब्धता का अनुमान लगाने की आवश्यकता पड़ती है। उपलब्ध जल की मात्रा के निर्धारण हेतु वर्षा एवं नदियों के बहाव का मापन आवश्यक है। जिन जल ग्रहण क्षेत्रों में मापन की सुविधा उपलब्ध नहीं है वहाँ जल का अनुमान लगाने के लिए जल औद्योगिकी मॉडलों का प्रयोग किया जाता है जो नदियों में बहने वाले जल का चार्ट (हाइड्रोग्राफ) बना सकते हैं। इस प्रकार के मॉडल साधारणतः पर्वतीय क्षेत्रों में ठीक कार्य नहीं करते इसलिए, सूक्ष्म जल ग्रहण क्षेत्रों में जल उपयोग की योजना बनाने हेतु नदियों के बहाव के मापन की संस्तुति की जाती है।

जल संसाधनों के समग्र अवलोकन हेतु जल मापन केन्द्र की स्थापना की आवश्यकता होती है। इसके वर्षा मापी तथा वाहरेखी यंत्र होते हैं। नदियों के प्रवाही जल का समय के साथ वक्र (हाइड्रोग्राफ) समयक फसल योजना बनाने हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

शुष्क भूमि में अगेती बुवाई हेतु एक्वा–फर्टी सीड डिल का प्रयोग

शुष्क भूमियों में बुवाई के समय मृदा नमी उपलब्धता में बहुत अनिश्चितता होने के कारण फसलोत्पादन बहुत कठिन कार्य है। इस कारण यह है के बीजों के समुचित अँकुरण एवं प्रारम्भिक अवस्था में फसल के स्थापित होने में समस्या आती है। एक्वा–फर्टी ड्रिल के प्रयोग से सही मात्रा में जल तथा समुचित सान्द्रता में उर्वरकों के प्रयोग द्वारा अच्छाा अँकुरण एवं फसलों की प्रारम्भिक अवस्था में स्थापन में सहयोग प्राप्त होता है। बाद में, उपसतही मृदा में संरक्षित जल का सहायता से तथा सर्दी के मौसम में होने वाली वर्षा द्वारा फसलों की बढ़वार जारी रहती है। एक्वा–फर्टी सीड ड्रिल द्वारा जल तथा उर्वरक घोल का प्रचालन इस प्रकार किया जाता है कि 1000 लिटर जल के उपयोग से 2 मि.मी. सिंचाई के साथ एक हेक्टेयर क्षेत्रफल को पूरा किया जा सकता है।

ट्रैक्टर चालित लेजर लैण्ड लेवलर

आधुनिक खेती में ट्रैक्टर एवं भारी–भरकम कृशि मशीनों के उपयोग के कारण खेती में समतलता एवं मेंडें सुरक्षित नहीं रहीं, जिससे वर्षा जल का अधिकांश भाग बहकर नष्ट हो जाता है। इसके अलावा कृषि भूमि की समतलता बिगड़ती जा रही है, साथ ही फसलों को दिए गए पोषक तत्वों का एक बड़ा हिस्सा भी वर्षा जल के साथ बहकर नष्ट हो जाता है। इस समस्या के कारण फसल की औसत पैदावार में गिरावट आ जाती है। कभी–कभी एक ही तरह के कृषि यंत्रों द्वारा एक ही गहराई पर बार–बार जुताई करने के कारण अधो–भूमि में हल तल के नीचे सख्त (कठोर) परतों का निर्माण हो जाता है, जिसके कारण मृदा में वायु नमी के आवागमन में बाधा पहुँचती है। साथ

ही पौधों की जड़ों का विकास भी ठीक तरह से नहीं हो पाता है। इस प्रकार की समस्याओं के निवारण के लिए आधुनिक कृषि यंत्र लेजर लैण्ड लेवलर के उपयोग से खेतों को पूर्णतया समतल किया जा सकता है। यह यंत्र चार उपकरणों से मिलकर बना होता है। जिसके तीन उपकरण कन्ट्रोल बौक्स, लेजर ग्राही और मांजा (बकेट) एक ट्रैक्टर में लगे होते हैं तथा लेसर ट्रांसमीटर खेत के बाहर तिपाई पर रखा जाता है यह लेसर ट्रांसमीटर खेत के समान्तर लेजर तरगें अपने चारों और भेजता है जिन्हें मांझे पर लगा लेजर ग्राही (रिसीवर) पकड़ लेता है और उन्हें कन्ट्रोल बॉक्स को भेजता है। ट्रैक्टर ड्राइवर की सीट की बगल में लगा हुआ यह कन्ट्रोल बॉक्स मांझे को आवश्यकतानुसार ऊपर नीचे करता रहता है, जिससे खेत में चलता हुआ ट्रैक्टर खेत को पूर्ण समतल कर देता है। यदि एक एकड़ खेत का ढ़लान 10 सें.मी. से कम है तो समय दो घन्टे प्रति एकड़ लगता है। इस यंत्र द्वारा समतल भूमि पर जल, उर्वरक, खाद, पोषक तत्व आदि एकसार वितरित होते हैं तथा उनका न्यूनतम क्षरण होता है। इस तकनीक से 20 से 30 प्रतिशत जल की बचत, 40 से 50 प्रतिशत पैदावार में बढ़ोत्तरी एवं 30 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि बढ़ जाती है। इसकी कीमत 3.25 से 4.50 लाख तक है तथा विभिन्न राज्य सरकारें इस पर 50 प्रतिशत तक अनुदान दे रही हैं।

लवणीय और क्षारीय भूमि सुधार हेतु उप–सतही जल निकास प्रौद्योगिकी

फसल पौधों की जड़ों के आस–पास के क्षेत्र की मिट्टी में उपलब्ध अतिरिक्त पानी और लवण पौधों के लिए हानिकारक होते हैं। खराब जल निकासी वाली मृदाओं के फसल की उपज में भारी कमी हो सकती है। बहुत देर तक जलमग्नता (जलाक्रांत) रहने पर जड़ क्षेत्र में ऑक्सीजन की कमी होने के कारण अन्ततः फसलें नष्ट हो जाती हैं। जल निकासी का मुख्य उद्देष्य पौधों के जड़ क्षेत्र के आस–पास अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना है, जो पौधों के उचित बढ़वार के लिए उपयुक्त है। फसल जड़ क्षेत्र में वायु–पानी लवण की इष्टतम मात्रा सुनिश्चित करने के लिए निम्न गुणवत्तापूर्ण जल निकासी वाले खेतों में जल–निकासी अनिवार्य है। उप–सतही जल निकासी प्रौद्योगिकी से लवणता से प्रभावित भूमि का सफलतापूर्वक सुधार किया जा सकता है। उप–सतही जल निकासी के लिए मिट्टी से बनी टाइल की नालियाँ सबसे सस्ती साधन है। मिट्टी की अच्छी तरह से पकाई हुई टाइलें मजबूत होती हैं। दीर्घ कालिक परीक्षणों से पाया गया कि ये मिट्टी की टाइलें उप सतही जल निकास तंत्र स्थापित करने में सर्वधा उपयुक्त है। 10 और 15 सें.मी. व्यास एवं 60 से 80 सें.मी. लम्बी मिट्टी की टाइलें उपयुक्त है। टाइलों में मिट्टी को जाने से राकने के लिये 7 टाइलों के जड़ों पर अतिरिक्त फिल्टर के रूप में नारियल की जटाओं की रस्सी लपेटी जाती है। टाइलों पर बने छेदों से टाइलों में जाने वाले जल प्रवाह को बढ़ाया जा सकता है।

कृषि में अपशिष्ट जल का पुनरोपयोग

देश में त्वरित शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण में वृद्धि के फलस्वरूप, सतही और उपसतही जल तीव्रता से विषैले हो रहे हैं। इस प्रकार के व्यर्थ तथा प्रदूषित जल की गुणवत्ता का आँकलन करके तथा उचित सुधार करके सिंचाई हेतु इनका उपयोग किया जा सकता है। जल प्रौद्योगिकी केन्द्र वैज्ञानिकी द्वारा कागज उद्योग की मिलों द्वारा बहिस्त्रावित जल को धान, मक्का, गन्ना, गेहूँ तथा सरसों जैसी फसलों को उगाने के लिए सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया गया है। 50 प्रतिशत प्रदूषित बहिस्त्रावित जल+50 प्रतिशत नलकूपों के जल के प्रयोग से धान, गन्ना तथा अन्य फसलों की पैदावार में 10 से 20 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गई। सिंचित भूमियों के भौतिक व रासायनिक गुणों में बहिस्राव द्वारा जोड़े गये कार्बोनिक पदार्थ के कारण वृद्धि हुई। उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटेशियम के रूप में मृदा की उर्वरता में वृद्धि पायी गई।

कम पानी से अधिक धान की श्री विधि

इस पद्धति का विकास मेडागास्कर में हुआ था। धान उगाने की इस विकसित के पाँच प्रमुख अवयव हैं

1. धान के 8 से 12 दिन के नवजात पौधों का रोपण जिसमें एक स्थान पर मात्र एक पौधा हो।
2. अधिक दूरी पर वर्गाकार पौध रोपण।
3. सीमित सिंचाई कर पानी की बचत।
4. बार–बार खेत में खरपतवार नियंत्रण हेतु क्रियाओं द्वारा वायु के अधिक आवागमन को बरकरार रखना।
5. अधिक से अधिक कार्बनिक खादों का उपयोग।

इस विधि से एक हेक्टेयर खेत हेतु पौध तैयार करने के लिये मात्र 100 वर्ग मी. क्षेत्रफल तथा मात्र 7.5 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। जबकि परम्परागत विधि में 800 वर्ग मी. क्षेत्रफल तथा 60 से 75 कि.ग्रा. बीज लगता है। चूँकि इस विधि में गोबर की खाद का विशेष महत्व है अतः 30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद डालना लाभकारी होता है। इस विधि में 8 से 12 दिन के पौधें के एक–एक पौध को 25X25 अथवा 30X30 सें.मी. की दूरी पर रोपित करते हैं। इसके बाद अत्यन्त हल्की सिंचाई करते हैं और खेत को लगभग नम अवस्था में रखा जाता है। इस विधि में जड़ों के अच्छे विकास, कल्लों के फुटाव में बढ़ोत्तरी, बाल वाले कल्लों की अधिक संख्या, खेत में फसल न गिरने एवं पोषक तत्वों की उच्च दक्षता के कारण न सिर्फ परम्परागत धान उगानें की विधि से अधिक पैदावार प्राप्त होती है अपितु 30 से 40 प्रतिशत जल की भी बचत होती है।

खारे जल का सिंचाई में उपयोग

लवणीय जल से भूमि व फसल पर कम से कम प्रभाव पड़े, इसके लिए निम्न क्रियाएं अपनाएंः–

(क) वर्षा के जल का उचित उपयोग

लवणीय जल के उपयोग से पड़ने वाले दुष्प्रभाव को वर्षा के जल के समुचित उपयोग से कम किया जा सकता है। इन जल को खेत से बाहर न जाने दें। वर्षा ऋतु से पहले भूमि को समतल कर जुताई करें व छोटी–छोटी क्यारियों में बांट कर मेंडबन्दी करें, जिससे वर्षा जल को सब स्थान पर बराबर भूमि में रिस कर नीचे चला जाए। यह जल अपने साथ लवण बहाकर नीचे ले जाता है व ऊपर की भूमि में लवण कम हो जाते हैं।

(ख) सिंचाई की विधियां

लवणीय जल से सिंचाई करने से सिंचाई के बाद नमक की कुछ मात्रा भूमि में एकत्र हो जाती है। यदि साथ–साथ निक्षालन नहीं हो तो धीरे–धीरे जड़ क्षेत्र में नमक एकत्र हो जाता है कि उपज घटने लगती है। इसके लिए निम्न सुझाव अपनाएं तो जड़ क्षेत्र में अतिरिक्त नमक एकत्र नहीं हो पाता है जैसेः–

- जिस वर्ष सामान्य से कम वर्षा हो (400 मि.मी. से कम) उस वर्ष अगली फसल की बुवाई से पहले लवणीय जल से भारी सिंचाई करें, ताकि लवण जड़ क्षेत्र से नीचे चले जाएं।
- बाढकृत सिंचाई करें तो मृदा को समतल रखें, जिसस कम जल से अच्छी सिंचाई हो।
- सूखे खेत में बुवाई करें एवं बुवाई के बाद सिंचाई करें व अँकुरण एवं पौधों को अच्छी तरह जमने तक ऊपरी सतह पर पर्याप्त मात्रा में नमी बनाए रखें।
- नाली विधि से सिंचाई हेतु मेंड पूर्व से पश्चिम दिशा में बनानी चाहिए व बीज या पौधे उत्तर दिशा में लगाने चाहिए।
- फसलों में खारे जल की बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति से सिंचाई करने से फसल पर लवणों का असर कम होता है।
- लवणीय–क्षारीय जल का स्प्रिंकलर विधि से सिंचाई करने पर पत्तियों पर दुष्प्रभाव होता है। इस दुष्प्रभाव को कम करने के लिए छिड़काव विधि द्वारा सिंचाई कार्य रात में करें।

मिश्रित जल का उपयोग

यदि एक ही स्थान पर अच्छा व खारा जल उपलब्ध हो तो उसको इस अनुपात में मिलाएं कि मिश्रित जल की विद्युत चालकता निष्चित सीमा से अधिक न हो। इस जल को चक्रीय विधि से दिया जा सकता है। अच्छे जल को फसलों की बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्थाओं में दिया जाए व बाद की अवस्थाओं में अगर खारा जल भी दिया जाए तो फसल उत्पादन संभव है।

लवणीय जल में जिप्सम का उपयोग

अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेटयुक्त सिंचाई जल के जिप्सम की आवश्यक मात्रा का निर्धारण सिंचाई जल की जांच कर किया जा सकता है। यदि सिंचाई जल में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा 2.5 मिलीतुल्य लीटर हो तो अधिक प्रति एक मिलीतुल्य प्रति लीटर अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट सान्द्रता होने पर लगभग 90 कि.ग्रा. कृषि ग्रेड जिप्सम प्रति हेक्टेयर प्रति 7.5 सें.मी गहरी सिंचाई हेतु खेत में मिलाना चाहिए। खेत में जिप्सम मिलाने का उचित समय मई–जून का महीना होता है।

लवणीय जल में उगने वाली फसलें एवं किस्मों का चयन

कम जल चाहने वाली तथा लवण व क्षार सहिष्णु फसलों की उन्नत किस्में (सारणीः 1) लगाएं जैसेः

सारणीः 1 कम जल मांग तथा लवण–क्षार सहिष्णु कुछ फसलों की किस्में

फसल का नाम	किस्में
धान	सीएआर 10, 13, 23, 27, 30, 36, सीता, ऊसर 1, जया, आईआर 8, 20, एवं 24।
गेहूँ	केआरएल 1–4, 19, 210, 213, राज 2037, डब्ल्यूएच 157।
सरसों	सीएस 52, 54, वरूण, पूसा बोल्ड।
जौ	डीएल 4, 106, 120, वीएचएस 12, रत्ना।
कपास	मलजारी, विक्रम 70, आईएस 452।
बाजरा	एमएच 269 एवं एमएच 280।
ज्वार	सीएसएच 11, 296, 488, एसवीपी 475, 678 एवं 881
मक्का	विजय एवं डेक्कन 103।

अन्य लवण सहनशील फसलें

ढैंचा, चकुन्दर, तारामीरा, रोड्स घास, पालक, खजूर, नारियल, गाजर, अनार, अंगूर एवं अमरूद आदि।

लवणीय जल उपयोग हेतु विशेष सस्य क्रियाएं

- सामान्य से 25 प्रतिशत अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग करें।
- लवणीय जल में क्लोराइड की अधिकता 70 प्रतिषत से अधिक हो 50 प्रतिशत अतिरिक्त फॉस्फोरस का प्रयोग करें।
- सामान्य से 20 से 30 प्रतिशत अधिक बीज दर प्रयोग करें।
- बुवाई मेंड़ों की अपेक्षा कूड़ में करें तथा सूखी भूमि या कम नमी पर बुवाई के बाद स्प्रिंकलर विधि से हल्की सिंचाई करें।
- खेत में गोबर की सड़ी खाद कम्पोस्ट आदि का भरपूर प्रयोग करें।
- पौधों से पौधों एवं लाइन से लाइन की दूरी कम कर दें।
- फसलों में निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए व अगर संभव हो तो पलवार का प्रयोग करें।
- वर्षा जल का भूमि से अधिक से अधिक जल संग्रह तथा संरक्षण।
- शुष्क वर्षा क्षेत्रों में रबी में केवल सहनशील फसलें उगायें।
- शुष्क वर्षा क्षेत्रों में ज्वार–गेहूँ, ग्वार–गेहूँ, बाजरा–गेहूँ तथा कपास–गेहूँ उपयुक्त फसल चक्र।
- 55 सें.मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में धान–गेहूँ, धान–सरसों, धान–बरसीम, ज्वार–सरसों, ढैंचा–गेहूँ, सूडान घास–जई आदि लाभकारी फसल चक्र है किन्तु सिंचाई के साथ पर्याप्त मात्रा में जिप्सम का प्रयोग आवश्यक है।

कृषि में दक्षतापूर्ण जल प्रबंधन करने से न केवल कृषक बंधुओं को अपनी उपज में कई गुना वृद्धि प्राप्त हो सकेगी बल्कि प्रतिबूँद उत्पादन से काम में भी वृद्धि होगी। इजराइल जैसे अति शुष्क देष के कृषक भाई ड्रिप सिंचाई प्रणाली के प्रयोग से न केवल स्वावलंबी बन गये हैं वरन विदेशों में अपने कृषि उत्पादों को नियमित करने में अग्रणी बन गये हैं। किसी भी नई तकनीकी को अपनाने में सर्वप्रथम विभिन्न प्रकार की बाधायें और कठिनाइयां आती हैं। यह कठिनाइयां हमारे देश के अनपढ़ कृषकों को बहुत बड़ी और अविजेय लगती हैं परन्तु हमें यह भी समझ आता है कि क्या हमारे देश के किसान हमेशा निर्धन और बेचारे ही बने रहना चाहते है अथवा प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते हुए अग्रणी कृषि उत्पाद निर्यात की अग्रिम पंक्ति में खड़े होना आपके घर में आपकी आवश्यकता है कि विभिन्न कठिनाइयों को झेलने के साथ ही साथ कृषक भाई ऐसी फसलों को उगाना और उनका विपणन और निर्यात करना प्रारम्भ करें और हमारे देश को भगवान द्वारा दिये गये जल, भूमि, वायु, सौर ऊर्जा इत्यादि प्राकृतिक संसाधनों के सम्यक उपयोग से स्वयं और समय का उत्थान करें और हमारे देश को एक प्रगतिशील और विकसित देश बनाने में अपना योगदान करें।

गेहूँ की फसल के रोग एवं प्रबंधन

मलखान सिंह गुर्जर, वैभव कुमार सिंह, महेन्द्र सिंह सहारण एवं रश्मि अग्रवाल
पादप रोगविज्ञान संभाग,
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

गेहूँ की फसल में अनेक रोग लगते हैं जिनमें गेरूए: धारीदार (*पक्सीनिया स्ट्राईफॉर्मिस ट्रिटिसाई*), पर्ण (*प. ट्रिटिसाइना*) एवं तना गेरूआ (*प. ग्रेमिनिस ट्रिटिसाई*), पर्ण झुलसा (*बाइपोलेरिस सोरोकीनियाना, अल्टरनेरिया ट्रिटिसाईना एवं पायरेनोफोरा ट्रिटिसाई रिपेंटिस*), श्लथ कंड (*अस्टिलेगो सेजेटम*) एवं करनाल बंट (*टिलीशिया इंडिका*) आर्थिक रूप से अधिक नुकसानदायक हैं। चूर्णी फफूँद (*इरीसायफी ग्रेमिनिस फॉ. स्प. ट्रिटिसाई*), हैड स्कैब (*फ्युजेरियम ग्रेमनेरियम*), हिल बंट (*टिलीशिया करिस, टिलीशिया फोयटीडा*) एवं ध्वज–कंड (*यूरोसिस्टस एग्रोपायराइ*) का महत्त्व क्षेत्रीय स्तर पर है।

रोग	रोग के लिए अनुकूलतम मौसम
तना गेरूआ	उच्च तामपान (20–35^0 सें.) एवं उच्च आर्द्रता (90^0)
पर्ण गेरूआ	मध्यम तामपान (20–25^0 सें.) एवं उच्च आर्द्रता (90^0)
धारीदार गेरूआ	कम तामपान (5–20^0 सें.) एवं उच्च आर्द्रता (90^0)
पर्ण झुलसा	उच्च तामपान (25–35^0 सें.) एवं उच्च आर्द्रता (90^0)
करनाल बंट	कम तामपान (10–20^0 सें.) के साथ पुष्पन अवस्था मं वर्षा तथा 80% से अधिक आपेक्षित आर्द्रता
श्लथ कंड (खुला कंडवा)	कम तामपान (15–20^0 सें.) एवं उच्च आपेक्षित आर्द्रता (90^0)
ध्वज कंड	20^0 सें. के आसपास मृदा तापमान तथा शुष्क एवं बलुई मृदा
चूर्णी फफूँद	20^0 सें. के आसपास मृदा तापमान तथा शुष्क एवं बलुई मृदा, उत्तरी पहाड़ियों/ निचली पहाड़ियों में होता है, 15–20^0 सें. तापमान एवं मध्यम स्तर की आपेक्षित आर्द्रता रोग के लिए अनुकूल है।
हिल बंट (पर्वतीय बंट)	केवल उत्तरी पहाड़ियों में 5–15^0 सें. तापमान पर होता है। हैड स्कैब उच्च तामपान (25–35^0 सें.) एवं उच्च आर्द्रता (90^0)

1. गेरूए (रतुए)

• तना गेरूआ

रोगकारक : *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटिसाई* **लक्षण** : यह रोग पत्तियों एवं तने पर गहरे भूरे रंग के लम्बे स्फोटों के रूप में आता है जिनमें बीजाणुधानी पुजों की वाह्य त्वचा पर चाँदी के रंग के धब्बे होते हैं। पौधे की बाली पर भी धब्बे उत्पन्न हो सकते है।

• पर्ण गेरूआ

रोगकारक: *पक्सीनिया ट्रिटिसाइ*

रोग के लक्षण: पत्तियों पर फैले अण्डाकार, भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई पड़ते हैं जिन्हें छूने पर बीजाणु ऊंगलियों पर चिपक सकते है।

• धारीदार गेरूआ

रोगकारक : *पक्सीनिया स्ट्राईफॉर्मिस*

लक्षण : रोग के लक्षण पत्तियों की शिराओं के साथ–साथ चलने वाले धब्बे की पीले रंग की धारियों के रूप में दिखाई पड़ते है। पौधे के तने, पर्णाच्छद एवं बाली पर भी ऐसे धब्बे दिखाई पड़ते है।

प्रबंधन :

विभिन्न कृषि – जलवायु क्षेत्रों में रोगरोधी किस्मों का प्रयोग।

तना गेरूआ और पर्ण गेरूआ की रोग प्रतिरोधी किस्में उगाएं जैसे कि एच आई 1500, एच डी 2967, एच आई 1530, एच आई 1531, एच आई 8498, एच डी 2733, एच डी 2781, एच डी 4672, एच डब्ल्यू 1085, एच डब्ल्यू 2004 डी एल15302 इत्यादि।

उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में (सिंचित समय से बुआई) धारीदार गेरूआ की रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे कि एच डी 3086, डब्ल्यू एच 1105, एच डी 2967, डी बी डब्ल्यू 88, डी पी डब्ल्यू 621–50, पी बी डब्ल्यू 550, पी डी डब्ल्यू 291(कठिया), पी डी डब्ल्यू 314 (कठिया) इत्यादि उगाएं।

उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में (सिंचित देर से बुआई) धारीदार गेरूआ की रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे कि एच डी 3059, डब्ल्यू एच 1021, एच डी 2967, डी बी डब्ल्यू 16, डी बी डब्ल्यू 71, पी बी डब्ल्यू 590, इत्यादि उगाएं।

धब्बो के दिखाई पड़ने पर 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई सी) का एक या दो बार पत्तियों पर छिड़काव करें।

2. पर्ण झुलसा

रोगकारकः यह एक जटिल रोग है जो *बाइपोलेरिस सोरोकिनियाना, पायरेनोफोरा ट्रिटिसाई रीपेंटिस* एवं *अल्टरनेरिया ट्रिटिसाईना* द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण : पत्तियों पर बहुत छोटे, गहरे भूरे रंग के पीली प्रभामंडल से घिरे धब्बे बनते है जो बाद में परस्पर मिलकर पर्ण झुलसा उत्पन्न करते है। संक्रमित पत्तियाँ जल्दी सूख जाती है और पूरा खेत दूर से झुलसा हुआ दिखाई पड़ता हैं। संक्रमित बाली में भूरे धब्बे वाले दाने दिखाई देता है।

प्रबंधन :

- उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में एच डी 2985, एच आई 1563, डी बी डब्ल्यू 39, सी बी डब्ल्यू 38, एन डब्ल्यू 1014, एन डब्ल्यू 2036, के 9107, एच डी 2733, डी बी डब्ल्यू 14, एच डी 2888, के 0307, एच यू डब्ल्यू 468
- 2.5 ग्रा/किग्रा बीज की दर से कार्बोक्सिन (बीटाबैक्स 75 डब्ल्यू पी)के साथ बीजोपचार।
- 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई सी) का छिड़काव।
- खेत में पानी खड़ा न रहने दें।

3. करनाल बंट

रोगकारक : *टिलिशिया इंडिका*

लक्षण : थ्रेसिंग के बाद निकले दानों में बीज की दरार के साथ–साथ गहरे भूरे रंग के बीजाणु समूह देखे जा सकते हैं। संक्रमण अधिक गंभीर होने पर पूरा दाना खोखला हो जाता है, केवल बाहरी पर्त शेष रह जाती है।

प्रबंधन :

- रोग सहिष्णु किस्मों का प्रयोग जैसे कि पी बी डब्ल्यू 502, डब्ल्यू एच 896, पी डी डब्ल्यू 233
- खेत में अधिक नमी न होने दे और स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई करें।
- बूट लीफ अवस्था में 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई सी) का पत्तियों पर छिड़काव।
- 3 ग्रा/किग्रा बीज की दर से थीरम में बीजोपचार
- फसल का प्लास्टिक द्वारा मल्चिंग किया जा सकता है।

4. भलथ कंड

रोगकारकः *आस्टिलेगो सेजेटम* उपजाति ट्रिटिसाई

लक्षण : रोग के लक्षण बाली निकलने के बाद ही दिखाई पड़ते है संक्रमित बालियों में दानों के स्थान पर बीजाणुओं का गहरे काले रंग का पाउडर भरा होता है।

प्रबंधन :

- 2.5 ग्रा/किग्रा बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू) या कार्बेडाज़िम (वाविस्टीन 50 डब्ल्यू पी) से अथवा 1.25 ग्रा/किग्रा बीज की दर से टेब्यूकोनेजोल 2 डी एस (रैक्सिल) के साथ बीजोपचार

5. ध्वज कंड

रोगकारकः *यूरोसिस्टस एग्रोपायराई*

लक्षण : रोग के लक्षण पत्तियों पर चाँदी क रंग के, लम्बे बीजाणुधानी पुंजो के रूप में दिखाई पड़ते हैं जो कवक के गहरे भूरे रंग के बीजाणुओं से भरे होते हैं। संक्रमित पौधे बौने रह जाते है, उन पर बालियाँ विकसित नहीं होती और वे समय से पहले की मर जाते है।

प्रबंधन :

- 2.5 ग्रा/किग्रा बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू) या कार्बेडाज़िम (वाविस्टीन 50 डब्ल्यू पी) से अथवा 1.25 ग्रा/किग्रा बीज की दर से टेब्यूकोनेजोल 2 डी एस (रैक्सिल) के साथ बीजोपचार, पहले साल जिन सुग्राही किस्मों में यह ध्वज कंड देखा गया हो, उसकी बुआई न करें।
- अन्य फसलों जो इस कवक की अतिथेय नहीं हैं, के साथ फसल चक्र में बदलाव करें।

6. चूर्णी फफूँद

रोगकारक : *इरीसायफी ग्रमिनिस ट्रिटिसाई*

लक्षण : यह रोग पौधे की पत्तियों, तने, आच्छद एवं बालियों पर सलेटीपन लिए सफेद चूर्ण (पाउडर) के रूप में दिखाई पड़ता है। ऐसे सफेद पाउडर के धब्बे सम्पूर्ण पत्ती को ढक सकते हैं और तापमान बढ़ने पर उनमें पिन की ऊपरी घुंडी की आकृति के गहरे रंग के क्लाइस्टोथीसिया बन जाते हैं।

प्रबंधन :

- रोग के आते ही दाने बनने की अवस्था तक 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई सी) का पत्तियों पर छिड़काव करें।
- छायादार खेत में गेहूँ की बुआई न करें।
- उत्तर पर्वतीय क्षेत्रों में एच एस 542, वी एल 907, एच एस 507, वी एल 907, वी एल 829, एच एस 490, वी एल 892 इत्यादि का प्रयोग करें।

7. पर्वतीय बंट (हिल बंट)

रोगकारक : *टिलीशिया फोइटाइडा* एवं टिकैरीज़

लक्षण : रोग के लक्षण बालियों पर दिखाई पड़ते हैं जिनमें दानों के स्थान पर कंड़–गोलियों के रूप में बीजाणु भरे होते हैं। ऐसी संक्रमित बालियों से दुर्गन्ध निकलती है।

प्रबंधन :

- 0.25 प्रतिशत कार्बोक्सिन (बीटावैक्स 75 डब्ल्यू पी) के साथ बीजोपचार।
- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग।
- बुआई के लिए संक्रमित खेत से बीज न लें।

मूंग की उन्नत प्रजातियों का बीज उत्पादन

ज्ञानेन्द्र सिंह, रमेश चन्द, चन्दू सिंह एवं संजय कुमार
बीज उत्पादन इकाई, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में एक दर्जन से अधिक उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में मूंग का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। भारत में मूंग (विगना रेडिएटा) का उत्पत्ति स्थान भारत अथवा मध्य एशिया माना जाता है। यह कम अवधि वाली गर्मियों तथा खरीफ में उगाई जाने वाली प्रमुख नगदी फसल है तथा इसकी दाल पचने में आसान व शाकाहारी लोगों के लिए उत्तम प्रकार की प्रोटीन का सस्ता और सहज उपलब्ध आहार है। यह पोषक तत्वों से भरपूर है। इसमें प्रोटीन 24–25%, कैल्सियम 124 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा., वसा 1.3%, फास्फोरस 326 मिलीग्रा. प्रति 100 ग्रा0, खनिज 3.5%, लोहा 7.3 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम, रेशा 4.1% तथा कार्बोहाइड्रेट 56% पाये जाते हैं। भारत विश्व में सर्वाधिक मूंग का उत्पादन करने के बाद भी 2–4 मिलियन मेट्रिक टन दालों का आयात प्रतिवर्ष करना पड़ता है जिसके लिए हमें करोड़ो डालर विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है क्योंकि हमारी उत्पादकता बहुत कम है। अब समय की आवश्यकता यह है कि उन्नतशील प्रजातियों का उन्नत बीज कृषकों की सहभागिता से पैदा करके उन्नत बीज उत्पादन तथा फसल उत्पादन तकनीक के साथ किसानों को कम कीमत पर उपलब्ध करवाया जाये ताकि मूँग उत्पादकता के वांछित परिणाम मिल सकें। गेहूँ की कटाई के बाद तथा खरीफ की बुवाई से पूर्व प्रायः खेत खाली रहते हैं अतः इस अल्प अवधि में सिंचित क्षेत्रों में किसान मूंग की खेती करके अतिरिक्त लाभ कमा सकते हैं तथा साथ ही साथ भूमि की रसायनिक, भौतिक तथा जैविक दशा में सुधार के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। एक अध्ययन से पता चला है कि मूंग की खेती से 30–35 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर भूमि स्थिर होती है जो अगली फसल जैसे धान, बाजरा, मक्का, गेहूँ, जौं, सरसों आदि के लिए उपयोगी होती है। प्रस्तुत लेख में उन्नत प्रजातियों के साथ–साथ उन्नत बीज उन्नत बीज उत्पादन तकनीक का वर्णन किया गया है।

सारणी 1 मूँग की प्रमुख उन्नतशील प्रजातियॉः

प्रजाति का नाम	अनुमोदन का वर्श	अनुमोदित क्षेत्र	औसत उत्पादन कु0/है0	फसल की अवधि (दिन)	अन्य विशेषतायें
पूसा 1371	2017	उत्तरी पूर्वी, उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र	9–9.50	65–70	खरीफ बुवाई, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
आई पी एम 205–7 (विराट)	2016	पंजाब, हरि0, उ0प्र0 म0प्र0, तमिलनाडू गुजरात कर्नाटक,	10–12	52–55	गर्मी में बुवाई के लिए उपयुक्त, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
आई पी एम 410–3 (शिखा)	2016	उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र, म0प्र0, महाराष्ट्र, गुजरात	10–12	67–80	खरीफ के लिए उपयुक्त, चमकदार हरा दाना, यलो मौजेक वायरस तथा पाउड्रीमिल्ड्यू प्रतिरोधी
एम एल 2056	2016	पंजाब	9–9.2	67–75	खरीफ के लिए उपयुक्त, चमकदार हरा मध्यम दाना, यलो मौजेक वायरस, एन्थ्रेकनोज प्रतिरोधी

केशवानंद मूंग 1 आरएमजी975)	2016	राजस्थान	10–12	65–70	खरीफ के लिए उपयुक्त, हरा चमकदार मध्यम बड़ा दाना, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
एम एस जे 118 केशवानंद मूंग 1	2016	राजस्थान	10–12	65–70	खरीफ के लिए उपयुक्त, दाना मध्यम हरा, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
एम एच 421	2014	उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	10–12	60–65	गर्मी के लिए उपयुक्त, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
एस एम एल 832	2013	पंजाब	9–9.2	62–67	गर्मी के लिए उपयुक्त, दाना मध्यम, हरा चमकदार
के एम 2195 (स्वाति)	2012	उत्तर प्रदेश	10–12	65–70	खरीफ के लिए उपयुक्त, यलो मुजैक वायरस प्रतिरोधी
एम एच–421	2012	हरियाणा	12–13	60–70	खरीफ तथा गर्मी में बुवाई हेतु, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
बीएम 2003–2	2012	महाराष्ट्र	8–11	65–70	दाना बड़ा हरा चमकदार,फली लम्बी
ए के एम–9904	2011	कर्नाटक, तमिलनाडू, उड़ीसा	10–11	57–80	खरीफ के लिए उपयुक्त
आईपीएम 02–14	2011	आं0प्र0, कर्नाटक, तमिलनाडू, उड़ीसा	10–12	62–70	गर्मी के लिए उपयुक्त, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
पी के वी ग्रीन गोल्ड	2011	महाराष्ट्र	10–11	57–80	खरीफ के लिए उपयुक्त
एम एच–125	2010	हरियाणा	12–13	64	यलो मौजेक वायरस तथा अन्य फफूंदी जनक रोगों के प्रतिरोधी
बी बी एन 3	2010	तमिलनाडू	8–9	65–70	पाउड्रीमिल्ड्यू के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
बसन्ती	2010	हरियाणा	15–17	65	खरीफ तथा गर्मी के लिए उपयुक्त यलो मौजेक वायरस मध्यम प्रतिरोधी
पेरी मूंग	2010	मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ	9–10	60–65	कृषकों में प्रचलित प्रजाति
के के एम 3	2009	कर्नाटक	8–9	62	फलीछेदक, पाउड्रीमिल्ड्यू तथा यलो मौजेक वायरस के प्रति प्रतिरोधी

मधिरा पेसरा 347	2009	आन्ध्र पेदश	11–12	60–70	एन्थ्रेकनोज, लीफ स्पोट के प्रति सहनशील
पूसा 0672	2009	जम्मू कश्मीर, मणिपूर, त्रिपुरा	16.00	52–103	खरीफ के लिए उपयुक्त, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
आई पी एम 2–3	2009	राजस्थान, पंजाब तथा जम्मू क्षेत्र	10–11	70–72	खरीफ –गर्मी के लिए उपयुक्त यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी, दाना बड़ा
के एम 2241	2008	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र	9–10	65–70	खरीफ के लिए उपयुक्त यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
सत्या	2008	उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	16–17	70	खरीफ के लिए उपयुक्त
एस एम एल–668	2007	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र	11–12	75–85	गर्मी में सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी गन्ने के साथ बुवाई हेतु उपयुक्त
टी जे एम 3	2006	मध्यपेदश	8–10	61–75	खरीफ तथा गर्मी यलो मुजैक वायरस प्रतिरोधी
एच यू एम 16 (मालवीय जनकल्याणी)	2006	उत्तरी पूर्वी मैदानी क्षेत्र	14–16	55–58	गर्मी के लिए उपयुक्त, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
बी एम 2002–1	2005	महाराष्ट्र	10–12	65–70	प्रचलित प्रजाति
शालीमार मूँग 1	2005	जम्मू कश्मीर	9–10	105–115	पोड ब्लाइट प्रतिरोधी
गंगा–1 (जमनोत्रि)	2004	राजस्थान	14–15	76	वायरस तथा फंगल बीमारियों के मध्यम प्रतिरोधी
एम एच–96–1 (मुस्कान)	2004	हरियाणा	15.00	70–75	यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
सी ओ जी जी 912	2005	दक्षिण क्षेत्र	8–9	62	खरीफ बुवाई, यलो मौजेक वायरस मध्यम प्रतिरोधी
टी एम 99–37	2005	उत्तरी पूर्वी मैदानी क्षेत्र	11–12	65	गर्मी बुवाई, यलो मौजेक वायरस मध्यम प्रतिरोधी
मालवीय जाग्रति (एच यू एम 12)	2003	उ0प्र0,बिहार,पश्चिम बंगाल झारखण्ड,	11–12	66	गर्मी बुवाई, यलो मौजेक वायरस मध्यम प्रतिरोधी

गंगा–8 (गंगोत्रि)	2001	उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	9–10	72	खरीफ बुवाई, फलीछेदक के प्रति सहनशील
पी डी एम 139	2001	उत्तर प्रदेश	12–15	50–60	गर्मी बुवाई, यलो मौजेक वायरस मध्यम प्रतिरोधी
एल ए एम 460	2001	आन्ध्र प्रदेश	12–13	70–75	यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी
पूसा विशाल	2000	उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	11–12	62	गर्मी बुवाई, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी, जैसिड तथा सफेद मक्खी के प्रति सहनशील
पूसा 9531	2000	उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	10–12	60	गर्मी बुवाई, यलो मौजेक वायरस प्रतिरोधी, जैसिड तथा सफेद मक्खी के प्रति सहनशील

प्रमुख प्रजातियॉ एवं उनका चुनाव

प्रजातियों का चुनाव क्षेत्र विशेष के अनुमोदन तथा प्रजातिय गुणों जैसे–ऊपज,दाने का आकार, दाने का रंग, बीमारी प्रतिरोधिता तथा प्रजाति की अवधि आदि के आधार पर करना चाहिए। उन्नत प्रजातियों का बीज हमेशा विश्वसनीय स्रोत जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थान, कृषि विश्व विद्यालय, राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य बीज निगम, स्टेट फार्म कार्पोरेशन आदि से खरीदना चाहिए तथा टेग पर लिखी सभी सूचनाये सारणी 2 में वर्णित बीज मानकों के आधार पर ध्यान से पढ़नी चाहिए। बीज की रसीद अवश्य लेनी चाहिए तथा उत्पादन तक सम्भालकर रखना चाहिए। बीज में किसी प्रकार की कमी पाये जाने पर सीड एक्ट के अनुसार कार्यवाही करनी चाहिए। प्रमुख प्रजातियों का विवरण सारणी 1 में दर्शाया गया है।

भूमि का चुनाव एवं खेत की तैयारी

मूँग की बुवाई गर्मी में गेहूँ, ज्यों, आलू, सरसों, गन्ना आदि के कटाई के बाद की जाती है। उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में मूँग की बुवाई सामान्यतः 15 मार्च से 15 अप्रैल तक इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए ताकि वर्षा शुरू होने से पूर्व फसल की कटाई की जा सके। देर से बुवाई करने पर अगेती मानसून की वर्षा के कारण फसल को भारी हानि होती है जिसके कारण बीज की गुणवत्ता खराब हो जाती है। अतः इस बात को ध्यान में रखकर उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में मूँग की बुवाई मार्च के अन्तिम सप्ताह से अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक करना सर्वोत्तम रहता हैं तमिलनाडू, आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक में जनवरी के अन्तिम सप्ताह में बुवाई करनी चाहिए। उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल में फरवरी में बुवाई करनी चाहिए। बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान में मार्च में तथा उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में अप्रैल के प्रथम पखवाड़े में बुवाई करना सर्वोत्तम रहता है। उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में खरीफ के मौसम में मूँग की बुवाई 15 जुलाई से 30 जुलाई तक कर देनी चाहिए देर से बुवाई करने पर दाना छोटा रह जाता है जिसके कारण पैदावार कम मिलती है तथा 15 जुलाई से पहले बुवाई करने पर वर्षा के कारण फसल के खराब होने का भय अधिक रहता है और यलो मुजैक वायरस का प्रकोप भी अधिक होता है। उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू तथा केरल में मूंग की बुवाई सिंचित क्षेत्रों में धान की कटाई के बाद रबी के मौसम में की जाती है।

फसल क्रम

धान–गेहूँ–मूंग (गर्मी), मूँग–गेहूँ–मूंग (खरीफ), मक्का/बाजरा/सोयाबीन–गेहूँ–मूंग (रबी), गन्ना + मूंग (गर्मी 1 : 2), कपास + मूंग (1 : 3 मध्य भारत 60/90 सेमी0), धान–धान–मूंग (दक्षिण भारत) आदि फसल क्रम अधिक प्रचलित है।

बीज की मात्रा एवं उपचार

मार्च अप्रैल (गर्मियों) में बुवाई हेतु 20–25 किग्रा. तथा जुलाई (खरीफ) में बुवाई के लिए 15–30 किग्रा0 बीज

प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है। बुवाई से पूर्व बीज को कीट तथा व्याधियों से बचाने के लिए उपचार अति आवश्यक है। बीज को सर्वप्रथम कवकनाशी जैसे–बाविस्टीन या थायरम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से उपचारित करके धूप में सुखाकर लगभग 6 घन्टे बाद दीमक के बचाव हेतु 2 मिली0 क्लोरोपायरोफॉस प्रति किग्रा0 बीज की दर से उपचारित करने के एक दिन बाद राइजोबियम कल्चर से उपचारित करके, अच्छी प्रकार धूप में सुखाकर बुवाई करनी चाहिए।

उर्वरक

मूंग के लिए 15–20 किग्रा0 नाइट्रोजन, 45–50 किग्रा0 फास्फोरस प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है, जिनकी पूर्ती के लिए 100 किग्रा0 डाई अमोनियम फासफेट 100 किग्रा0 प्रति हैक्टेयर खेत में अन्तिम जुताई के समय या सीडड्रिल द्वारा जड़ क्षेत्र में प्रयोग करना चाहिए।

बुवाई की विधि

बीज की बुवाई हमेशा लाइनों में करें ताकि निराई गुड़ाई तथा रोगिंग में सुविधा रहे। बुवाई के लिए लाइन से लाइन की दूरी 30 सेमी0 रखनी चाहिए तथा बीज की गहराई 3–4 सेमी0 रखनी चाहिए। नमी को संरक्षित करने के लिए बुवाई के साथ पाटे का प्रयोग भी करना चाहिए। अंकुरण के 15 दिन बाद पौधों से पौधों की दूरी 7–10 सेमी0 कर देनी चाहिए।

सिंचाई

ग्रीष्म कालीन मूंग की खेती में सिंचाई की आवश्यक पड़ती हैं एक सिंचाई बुवाई के 25–30 दिन बाद करनी चाहिए तथा दूसरी सिंचाई फूल आने से पूर्व करनी चाहिए और यदि बहुत आवश्यक लगे तो तीसरी सिंचाई भी फली बनने के समय काफी लाभदायक रहती है। फूल आने के समय कभी सिंचाई नही करनी चाहिए क्योंकि इससे फूल झड़ने का भय रहता है तथा फलियां कम बनने से पैदावार भी कम मिलती है।

खरपतवार नियंत्रण

मूंग की फसल में खरपावारों की गम्मीर समस्या रहती है क्योंकि शुरू की अवस्था में पौधों की वृद्धि धीमी तथा खरपावारों की वृद्धि तेजी से होती है, इस कारण मूँग का पौधा खरपतवारों के साथ प्रतियोगिता नहीं कर पाता। मूंग में प्रमुख रूप से मौथा, चौलाई, सांठी, मकरा, बादरा, मकोई, हरहुई, चिलमिली आदि आधिक उगते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 24 घन्टे के अन्दर पेन्डीमेथीलीन 1 ली0 सक्रिय तत्व 500–600 ली0 पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव के 20–25 दिन तक खेत में किसी प्रकार की कर्षण क्रियायें न करें ताकि खरपतवारनाशी की परत न टूटे। खेत में खड़ी फसल में प्रथम सिंचाई के बाद एक निराई खुरपी अथवा कसोले से अवश्य करनी चाहिए।

अंवाछनीय पौधे निकालना (रोगिंग)

बीज की अनुवांशिक शुद्धता बनाये रखने के लिए फसल की बढ़वार की आस्था पर, फूल आने की अवस्था पर तथा फली बनने की अवस्था पर खेत में घूमकर पत्तियों के आकार, रंग, पौधो की ऊंचाई तथा फैलाव,फूल के रंग तथा फली के आकार व रंग के अनुसार अन्य प्रजाति कि पौधों की तथा रोग ग्रसत पौधो की समय–समय पर खेत से बाहर निकाल देना चाहिए।

पृथकता दूरी एवं बीज के मानक

मूंग स्वं परागित फसल है अतः शुद्ध बीज पैदा करने के लिए एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति के बीज किसी भी प्रकार के मिश्रण की सम्भावना से बचने के लिए 5–10 मीटर का अन्तर अवश्यक हैं बीज की अनुवांशिक तथा भौतिक शुद्ध ता का ध्यान रखते हुए बीज मानकों का पालन सारणी 2 के अनुसार करना चाहिए।

प्रमुख बीमारियॉ

1. पीला चितरी रोग (येलोमौजेक वायरस): यह मूंग का अति गम्भीर रोग है जो उत्तर भारत में बहुत अधिक पाया जाता हैं यह वायरस बीमारी है जो सफेद मक्खी के द्वारा फैलता है इसके प्रकोप से पत्ते पीले हो जाते हैं तथा उन पर गोल घब्बे बन जाते हैं, पत्तियों का आकार घट जाता है, पत्तियों में दरारें पड़ जाती हैं तथा उनका आकार भी घट जाता हैं

2. सर्कोस्पोरा पर्ण दागः यह फफूंदी जनक रोग है। इसके प्रकोप से पत्तियों पर बैगनी लाल गोल धब्बे बन जाते हैं तथा बाद में यह फलियों पर भी फैल जाते हैं इसके प्रकोप से फलियां काली पड़ जाती हैं।

3. पाउड्री मिल्ड्यू: इसका प्रकोप मूंग उगाये जाने वाले सभी क्षेत्रों मे होता है यह फंफूदी जनक रोग है। इसके प्रकोप से सर्वप्रथम पत्तियों पर सफेद रंग के चकते बनते

हैं। पत्तियों तथा हरे भागों पर सफेद चूर्ण सा जमा हो जाता है। रोग की गम्भीर अवस्था में पौधों की पत्तियां पूर्णतया सूख जाती है।

4. एन्थ्रेकनोजः यह भी फफूंदी जनक रोग हैं इसके प्रकोप से पत्तियों पर गहरे भूरे धब्बे पड़ जाते हैं, बाद में धब्बों का आकार बढ़कर पत्तियों के किनारे तक फैल जाता है। बाद में यह रोग फलियों पर भी फैल जाता है तथा फलियों पर काले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं।

5. चारकोल विगलनः यह भी फफूंदी जनक रोग हैं जिसका प्रकोप पंजाब, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा में अधिक होता हैं इस बीमारी से सर्वप्रथम पौधों की जड़े गल जाती है तथा तने के निचले भाग पर लाल भूरे व काले धब्बे पड़ जाते हैं।

प्रमुख कीट

1. थ्रिप्सः ये कीट पत्तियों, फूलों तथा कलियों को खाकर हानि करते हैं यह फसल में सर्कोस्पोरा पर्ण दाग रोग को फैलाते है।

2. सफेद मक्खीः यह प्रमुख कीट है जो पौधो की पत्तियों तथा कोमल भाग का रस चूसती हैं। यह यलो मौजेक वायरस को फैलाती है।

3. जैसिडः ये बहुत छोटे छोटे कीट हैं जो पत्तियों की निचली सतह पर रहकर पत्तियों का रस चूसकर हानि करते हैं इनके प्रकोप से पत्तियां भूरे रंग की हो जाती है तथा बाद में गिर भी जाती हैं।

रोग एवं कीट प्रबन्धन

- खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए।
- बीज विश्वसनीय स्रोत से खरीदे।
- प्रजाति की बुवाई अनुमोदित क्षेत्र तथा उचित समय पर करें।
- अंकुरण के बाद पौधो से पौधो की उचित दूरी बनायें रखे।
- कीट व बीमारी प्रतिरोधी किस्में उगायें।
- खेत में पानी न खड़ा होने दें।
- जहां दीमक का अधिक प्रकोप होता है वहॉ दीमक के नियंत्रण के लिए 25 किग्रा0 रीजेन्ट प्रति हैक्टेयर बुवाई से पूर्व खेत में मिलायें।
- बुवाई के एक माह बाद मेटासिस्टाक्स या डेल्टामेथ्रिन 1 ली0 दवा 800–1000 ली0 पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करें।
- कीट तथा वायरस का प्रकोप दिखाई देने पर दूसरा छिड़काव बुवाई के 40 दिन बाद डायमिथोएट) या मोनोक्रोटोफॉस 1 ली0 800–1000 ली0 पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करना चाहिए।
- कीट तथा वायरस का अधिक प्रकोप दिखाई देने पर तीसरा छिड़काव बुवाई के 50 दिन बाद इन्डोक्साकार्प 500 मिली0 दवा 800–1000 ली0 पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करना चाहिए।
- फफूंदी जनक रोगों के प्रकट होने पर उपरोक्त कीट नाशकों के साथ 2ग्रा0 प्रति ली0 डाइथेन एम 45 का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
- कीट तथा फफूंदीनाशक का छिड़काव आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए।
- खेत से यलो मुजैक वायरस ग्रसित पौधो को समय समय पर निकालकर मिट्टी में दबा दें।
- कीटनाशकों तथा फफूंदीनाशको का छिड़काव करते समय मुहॅ पर मास्क तथा हाथ में दस्ताने अवश्य पहन कर रखें।

कटाई तथा थ्रेसिंग

कटाई प्रजातियों पर निर्भर करती है, जिन प्रजातियों में 70% से अधिक फलियां एक साथ पक जाती हैं उन्हें एक साथ काटकर 4–5 दिन तेज धूप में सुखाकर ट्रैक्टर की दांव चलाकर अथवा थ्रेसर से बीज को अलग करना चाहिए। जिन प्रजातियों में फलियां 70% से कम फलियां एक साथ पकती हैं उन्हें तोड़ना ही लाभप्रद रहता है क्योंकि फलियां तोड़ने के बाद फसल को खेत में जोतने से भूमि में जीवांश की मात्रा बढ़ जाती है जिसका लाभ अगली फसल को मिलता है। कटाई तथा थ्रसिंग करते समय थ्रेसिंग फ्लोर तथा थ्रेसिंग मशीन की अच्छी प्रकार सफाई करनी चाहिए ताकि मिश्रण की सम्भावना न रहें।

ग्रेड़िग एवं पैकिंग

थ्रेसिंग के बाद बीज को दो दिन धूप में सुखाकर, पंखे से सफाई करके ग्रेड़िंग करना चाहिए। ग्रेड़िंग करते समय ऊपर की जाली का आकार सामान्यतः 5.5 मिली0 तथा नीचे की जाली का आकार 2.8–3.2 मिमी. रखना चाहिए।

ग्रेडिंग मशीन तथा ग्रेडिंग फ्लोर की अच्छी प्रकार सफाई करें ताकि मिश्रण न हो तथा ग्रेडिंग के बाद बीज को नई बोरियों में अथवा उपचारित की हुई पुरानी बोरियों में भरकर प्रत्येक बोरी पर प्रजाति का टेग लगाकर भण्डार ग्रह में रख देना चाहिए तथा बिक्री के समय सामान्यतः 5 किग्रा. के पैक बनाकर बिक्री करनी चाहिए। बैग के ऊपर सारणी–2 में वर्णित बीज मानको के अनुसार सभी आवश्यक सूचनाये टेग पर लिखनी चाहिए। प्रजनक, आधार, प्रमाणित तथा सत्यापित बीज के लिए क्रमशः पीला, सफेद, नीला तथा हरे रंग का टेग प्रयोग करना चाहिए।

सारणी –2 उन्नत बीज के मानक

बीज मानक	बीज मानकों का स्तर	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
पृथक्करण दूरी	10 मीटर	5 मीटर
अन्य प्रजाति के पौधें	0.10 प्रतिशत	0.20 प्रतिशत
फसल निरीक्षण की संख्या	2 बार	2 बार
बीज ढेर का आकार (अधिकतम)	200 क्विंटल	200 क्विंटल
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	98 प्रतिशतअ	98 प्रतिशत
क्रिय तत्व (अधिकतम)	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किग्रा0	10 प्रति किग्रा0
कुल खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किग्रा0	10 प्रति किग्रा0
अन्य प्रजाति के बीज (अधिकतम)	10 प्रति किग्रा0	20 प्रति किग्रा0
अंकुरण कठोर बीज सहित (न्यूनतम)	75 प्रतिशत	
बीज में नमी (अधिकतम) 9 प्रतिशत	9 प्रतिशत	
वायुरोधी पैकिंग के दौरान बीज में नमी (अधिकतम)	8 प्रतिशत	8 प्रतिशत
कार्यशील बीज के नमूना (शुद्धता विश्लेषण)	60 ग्रा0	60 ग्रा0
कार्यशील बीज का नमूना (अन्य प्रजातियों की गणना)	600 ग्रा0	600 ग्रा0
बीज जनित बीमारियों से प्रभावित पौधे	0.10 प्रतिशत	0.20 प्रतिशत

फसलों का संरक्षण व मूल्यवर्धित उत्पाद

प्रतिभा जोशी, निशि शर्मा, शुभाश्री साहू, जयप्रकाश डबास एवं गीतांजलि जोशी

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110012

कृषि उत्पाद संरक्षण की कला हमारे समाज में प्राचीनकाल से प्रचलित है। संस्कृति और सभ्यता के क्रमिक विकास और वैज्ञानिक खोज के साथ साथ संरक्षण कला का रूप विभिन्न तरह से विकसित होता रहा है। वर्तमान समय में कृषि उत्पाद संरक्षण व्यावसायिक और घरेलू स्तर पर विज्ञान और कला के मिश्रण के रूप में विद्यमान है। जैसा कि हम सभी जानते हैं अनुकूल मौसम में खाद्य उत्पादों जैसे खाद्यान्न, दलहनी फसलों और फल व सब्जियों कि भरमार होती है और मूल्य कम हो जाता है और अधिशेष का उचित मूल्य नहीं मिलने से ये चीजें खराब हो जाती हैं।खाद्य संरक्षण में भोजन कि पोषक क्षमता बढ़ाने एवं भोजन के स्वाद तथा बनावट में कोई विपरीत प्रभाव न पड़ने पर जोर दिया जाता है। आमतौर पर संरक्षण में हम बैक्टीरिया, कवक व अन्य सूक्ष्म जीवों के विकास कि रोकथाम तथा वसा से ऑक्सीकरण के कारण कृषि उत्पाद को बासी व विषाक्त होने से बचाते हैं साथ ही साथ पदार्थों की प्राकर्तिक उम्र बढ़ने और मलिनीकरण (रंग परिवर्तन) आदि प्रक्रियाओं की गति को धीमा करते हैं।

खाद्यान्न व दलहनी फसलों का संरक्षण

खाद्यान्न व दलहनी फसलों को सुरक्षित भंडारण के द्वारा संरक्षित किया जा सकता है। अनाज व दालों को मुख्य रूप से घुन, सूंड वाली सुरसुरी, खपरा बीटल, दाल का धोरा व पतंगा नुकसान पहुंचाते हैं। कीट पतंगों से बचने के लिए नमी का नियंत्रण आवश्यक है अतः खाद्यान्न व दलहनी फसलों को धूप में सुखाकर नमी का नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त रसायनिक तरीकों में धूम्रन द्वारा भी कीट नियंत्रण लाभप्रद है। घरेलू स्तर पर खाद्यान्न व दलहनी फसलों का मूल्यसंवर्धन किया जा सकता है।

फलों व सब्जियों का संरक्षण

धान्य व दलहनी फसलों की अपेक्षा फल व सब्जियाँ जल्दी खराब होते हैं। हमारे देश में उत्पादित फलों का लगभग 30–40 प्रतिशत हिस्सा तुड़ाई उपरांत सही प्रबंधन की कमी के कारण खराब हो जाता है। संरक्षण प्रक्रिया में आम तौर पर बैक्टीरिया कवक और अन्य जीवाणु की वृद्धि को रोकना और साथ ही साथ सड़ी हुई दुर्गन्ध पैदा करने वाली वसा के ऑक्सीकरण की गति को धीमा करना शामिल है। इसमें वह प्रक्रिया भी शामिल है जिसके तहत भोजन तैयार करते समय प्राकृतिक परिपक्वन और विवर्णता का प्रावरोध किया जाता है, जैसे कटे हुए सेबों में प्रतिक्रिया स्वरूप पाचकरस संबंधी भूरापन का होना, कुछ संरक्षण विधियों में खाद्य पदार्थ को उपचार के पश्चात सीलबंद करने की आवश्यकता होती है, ताकि उन्हें जीवाणुओं द्वारा पुनः दूषित करने से बचाया जा सकेय अन्य, जैसे कि सुखाना, खाद्य पदार्थों को लंबे समय तक बिना किसी विशेष नियंत्रण के संग्रहित रखने में सहायता करते हैं। यदि कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखें और कुछ साधारण क्रियाओं के माध्यम से इस क्षति को कम किया जा सकता है।

फलों एवं सब्जियों को जल्द खराब होने का भी डर होता है अतः तुड़ाई उपरांत सबसे पहले सही ढंग से उत्पाद की छँटाई करें। छँटाई के बाद सही वर्गीकरण करना बहुत जरूरी होता है। समान्यतः वर्गीकरण में हम उत्पादों के आकार, वजन, बनावट के साथ साथ ठोसपन आदि के आधार पर कर सकते हैं।

वर्गीकरण के बाद आवश्यकतानुसार पूर्वशीतलीकरण (प्रीकूलिंग) करना चाहिए क्योंकि पेड़ पर लगे फल या खेत में उगी सब्जियों का आंतरिक तापमान वातावरण के तापक्रम से अधिक होता है। तुड़ाई उपरांत अधिक तापमान अधिकतर औद्यानिक फसलों की गुणवत्ता पर प्रभाव डालता है इसलिए निर्वात द्वारा, कूल चेंबर्स, बर्फ , ठंडी हवा आदि माध्यम से प्रीकूलिंग करते हैं।

कुछ फलों में आरोग्य करने हेतु क्योरिंग की जाती है

और फल व सब्जियों में नमी की मात्रा घट जाती है और भंडारकाल बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ फल जैसे सेब आदि में नमी नियंत्रण हेतु मोमीकरण भी किया जाता है। मोमीकरण हेतु कृत्रिम रूप से फल व सब्जियों में मोम की परत चढ़ाई जाती है जिससे फलों में पानी का ह्रास कम होता है।

सर्दियों का मौसम आ रहा है और इस समय फलों और सब्जियों की बहुतायत होती है और पोषण सुरक्षा के लिहाज से ये बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इसके साथ ही हमें खाद्यान्न की दृष्टि से सम्पूर्ण आत्मनिर्भर बनाने में प्रसंस्करण की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ हम फलों और सब्जियों के मूल्यवर्धित उत्पादों का उल्लेख कर रहे हैं।

लहसुन पेस्ट

लहसुन का पेस्ट बनाने के लिए छिली हुई कलियों को ग्राइंडर द्वारा पीसा जाता है। इस पेस्ट को लंबे समय तक रखने के लिए इसका पी एच मान 4–4.5 के बीच में होना चाहिए। इस पी एच मान पर इसमें सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि नहीं होती तथा रंग व सुगंध भी उपयुक्त बनी रहती है। यह पी एच बनाए रखने के लिए इसमें साइट्रिक अम्ल मिलते हैं तथा लंबे समय तक सुरक्षित रखने हेतु 0–05 प्रतिशत सोडियम बेंजोएट तथा 1.5 प्रतिशत नमक मिलाया जाता है। लहसुन एवं अदरक का मिश्रित पेस्ट भी बना सकते हैं। इसे बनाने के लिए 35 भाग छिली लहसुन एवं 55 भाग छिली अदरक एवं 10 ग्राम नमक को एक साथ पीसा जाता है तथा साथ में 30 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल एवं 0.1 प्रतिशत सोडियम बेन्जोएट मिलाया जाता है।

लहसुन का पाउडर

लहसुन का प्रयोग सब्जी में मसाले या चटनी के रूप में होता है। लहसुन का पाउडर बनाने के लिए कलियों को छील कर काट लें। तत्पश्चात छीले हुए लहसुन को धूप में या ओवन में कुरकुरा होने तक सूखा लें। सूखने पर मिक्सर में पीसकर छानकर 2 ग्राम पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइट प्रति किलोग्राम पाउडर में मिला लें। इसी विधि से प्याज का पाउडर भी बनाकर संरक्षित किया जा सकता है।

टमाटर सौस

टोमैटो केचअप बनाने बनाने के लिये सबसे पहले टमाटरों को अच्छी तरह धो लें और उन्हें काट लें। कटे हुए टमाटर, अदरक, काली मिर्च, लौंग, इलाचयी, दालचीनी को एक बर्तन में लेकर मध्यम आंच पर उबालें। बीच–बीच में उन्हें चलाते रहें, जिससे वे तली में जलने न पाएं। जब टमाटर नरम हो जाएं, तब आग बन्द कर दें। नरम होने के बाद टमाटरों को चम्मच की सहायता से अच्छी तरह मैश कर लें। उसके बाद इन्हें छलनी से छान लें, जिससे टमाटर का रस अलग हो जाए। बचे हुए हिस्से को मिक्सर में डाल कर पीस लें और उसे पुनः छान लें। अब छलनी में केवल बीज और टमाटर के छिलके ही बचेंगे। उन्हें आप अलग कर दें। टमाटर के रस को अब एक बर्तन में करके गैस पर चढ़ाएं और मध्यम आंच पर पकाएं। जब रस में उबाल आने लगे, उसमें चीनी, सोंठ पाउडर, गरम मसाला और काला नमक डाल दें और थोड़ी–थोड़ी देर में चलाते रहें। जब टमाटर का रस इतना गाढ़ा हो जाए कि वह चम्मच से गिराने पर आसानी से न गिरे, आग को बंद कर दें। ठंडा होने पर केचअप में सिरका मिला दें और उसे किसी कांच के सूखे बर्तन में भर कर रख दें।

सामग्री

टमाटर – 02 किग्रा. (अच्छी तरह से पके हुए),
शक्कर – 350 ग्राम, काली मिर्च – 15,
लौंग – 05, काली इयायची – 03,
सिरका – 03 बड़े चम्मच,
सोंठ पाउडर – 02 छोटे चम्मच,
गरम मसाला पाउडर – 01 छोटा चम्मच,
अदरक – 02 इंच का टुकड़ा (कद्दूकस किया हुआ),
दालचीनी – 01 टुकड़ा,
काला नमक – स्वादानुसार।

आंवला का मुरब्बा

1 किलो ताजे एवं साफ–सुथरे आंवले लेकर पानी में तीन दिन भीगने दें। इसके बाद उन्हें पानी से निकालकर कांटों से गोद लें और चूना पानी में घोलकर उसमें आंवले को तीन दिन तक भीगने दें। चौथे दिन साफ पानी से धोकर मिश्री तथा पानी में उन्हें भाप दें। फिर कपड़े पर फैलाकर सुखा लें। अब चाशनी बनाकर उसमें आंवले छोड़ दें और पकाएं। जब आंवले अच्छी तरह गल जाएं तब उसमें काली मिर्च, केसर और इलायची मिला दें। बाद में ठंडा करके मर्तबान में भरकर रख दें।

सामग्री

1 किलो ताजे आंवला,
10 ग्राम चूना, 25 ग्राम मिश्री,
1.25 किलो शक्कर,
1 चम्मच काली मिर्च,
5–7 केसर के लच्छे,
पाव चम्मच इलायची पावडर

आंवला कैंडी

एक बड़े बर्तन में पानी भर के गरम होने के लिए गैस पर चढ़ाये. जब पानी उबलने लगे तो उसमे आंवला डाल दें (ध्यान रहे जब पानी उबलने लगे आंवला तभी डाले)। दो मिनट तक आंवले को उबालें, फिर गैस बंद करदें, और आंवले को उसी पानी में दो मिनट तक और पड़ा रहने दे। दो मिनट के बाद पानी को फेक दें और आंवले को ठंडा होने दें। जब आंवला पूरी तरह से ठंडा हो जाये तो उसे काट के फांके बना लें और गुठली फेक दें । अब एक दुसरे बर्तन में आंवला डाले और उसके ऊपर चीनी डाल के मिला दें। बर्तन को ढक के तीन दिन के लिए ऐसे ही रख दे, एक दिन बाद बर्तन खोल के देखेगे तो चीनी घुल गई होगी, और आंवला ऊपर तैर रहा होगा। एक बार चला के बंद कर दें। तीसरे दिन जब बर्तन खोलेंगे तो सारे आंवले नीचे बैठ गए होंगे। आंवला छान के बाहर निकाल लें और सिरप अलग रख दें। किसी बड़ी थाली या ट्रे में आंवला फैला दें और धूप में रख दें, धूप में चार पांच दिन सूखा लें। सूखने के बाद आंवले का रंग हल्का भूरा हो जायेगा। जब आंवला अच्छी तरह से सूख जाये तो पिसी हुई चीनी उस के ऊपर डाल के अच्छे से मिला दें। फिर किसी एयरटाइट डिब्बे में डाल के बंद करके रख दें। जब मन चाहे तब निकाल के आंवला कैंडी खाए और खिलायें।

सामग्रीः

1/2 किलो आंवला
300 ग्राम चीनी
2 बड़े चम्मच पिसी चीनी

आंवला का लड्डू

विटामिन सी और आयरन से भरपूर आंवला लड्डू बेहद स्वादिष्ट होते हैं। आंवला लड्डू हमारे शरीर में प्रतिरोधक शक्ति पैदा करते हैं। आंवले को कद्दूकस करके एक दिन के लिए 2 प्रतिशत नमक के घोल में रख कर छोड़ दें। दूसरे दिन पानी बदलकर, साफ पानी में कसे हुए गूदे को 2 प्रतिशत फिटकरी डालकर गरम करें। गूदा मुलायम होने पर आंच से उतारकर ठंडा पानी डालकर निचोड़ लें। चीनी की दो तार की चाशनी बनाएँ और उबाल आने पर साइट्रिक अम्ल मिलाएँ। गूदे को चाशनी में डालकर गाढ़ा होने तक हिलाते रहें और मिश्री मेवा डालकर लड्डू बनाएँ।

सामग्रीः

1 किलो आंवला
1.25 किलोग्राम चीनी पानी) लीटर
सूखा मेवा (200 ग्राम बादाम, चिरौजी, काजू आदि)
साइट्रिक अम्ल / नींबू रस 5 ग्राम

आंवला बर्फी

आंवला लेकर उसे पानी में अच्छी तरह उबाल लें। उबले हुए आंवले से गुठली अलग कर के आंवले का पेस्ट बना लें। पेस्ट को आंच पर चढ़ा कर गाढ़ा होने तक हिलाते रहें। पेस्ट गाढ़ा होने लगे तो चीनी मिला लें और साइट्रिक अम्ल डाल कर हिलाते रहें। इसके बाद मिश्रण में पेक्टिन पाउडर मिला के एकसार करें। तथा आंच से उतारकर एल्यूमिनियम की ट्रे में फैलाकर जमा दें। जमने के पश्चात उसे बर्फी के आकार में काट लें।

सामग्रीः

1 किलो आंवला
800 ग्राम चीनी
पेक्टिन पाउडर –15 ग्राम
साइट्रिक अम्ल –2 ग्राम

कृषि में वर्षा जल संरक्षण एवं संग्रहण

रणबीर सिंह, अनिल कुमार मिश्र, मान सिंह एवं विश्नाथ प्रसाद,
जल प्रौद्योगिकी केंद्र, भा.कृ.अनु.सं. नई दिल्ली

भारत में विश्व के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 2.45 प्रतिशत, जल संसाधनों का 4 प्रतिशत और जलसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत भाग है। हमारे देश में एक वर्ष में वर्षा से लगभग 4000 घन कि.मी. जल प्राप्त होता है। धरातलीय जल और पुनः पूर्तियोग भूजल से 1869 घन कि.मी. जल उपलब्ध है, जिसका 60 प्रतिशत जल ही उपयोग किया जा सकता है। इस तरह देश में उपयोगी जल संसाधन 1121 घन कि.मी. है। खेती के लिए पानी सबसे अधिक महत्वपूर्ण संसाधन है। देश में जितना कुल पानी प्रयुक्त होता है, उसका सर्वाधिक उपयोग 70 प्रतिशत सिंचाई में, 23 प्रतिशत उद्योगों में तथा घरेलू एवं अन्य उपयोगों में केवल 7 प्रतिशत काम में आता है। जल की उपयोग की पूर्ति के लिए सघन कृषि के अन्तर्गत ट्यूबवैल सिंचित क्षेत्रों में भू–गर्भ जल के अत्यधिक व अविवेक पूर्ण दोहन से लवणीयता, जल भराव, उर्वरक एवं पोषक तत्वों का नुकसान, कीट–बीमारियों का अधिक प्रकोप, मिट्टी संरचना, बिगड़ना, तथा बाढ़ आना, सूखा पड़ना, मृदा कटाव, जल उपलब्धता एवं गुणवत्ता आदि प्रमुख समस्याऐं पैदा कर दी है तथा जल स्रोतों के कुप्रबंधन एवं अंधाधुंध दोहन से ही विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक जल संसाधन विलुप्त हो रहे हैं।

हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है और कृषि स्वंय जल की उपलब्धता पर निर्भर करती है। हमारे देश को आजाद हुए 68 साल हो चुके हैं इस दौरान हमने सूचना प्रौद्योगिकी और औद्योगिक उत्पादन जैसे कई क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता हासिल की है, लेकिन पानी के प्रबंधन के लिए विशेष प्रयास नहीं किए गए। यही कारण है कि हमारे किसान आज भी मानसून पर निर्भर हैं। आज तक भारत इस समस्या का कोई स्थाई समाधान नहीं खोज पाया है। आज भी पानी नहीं बरसता तो हाहाकार मच जाता है, और यदि अधिक बरसे तो भी। प्रकृति ने हमें खेती के अनुकूल पानी भी दिया है लेकिन हम उसका प्रयोग सर्वथा उत्तम विधियों से नहीं कर पा रहे हैं। सिंचाई के पानी का देश में बहुत अपव्यय किया जाता है, कई मामलों में तो प्रयोग से ज्यादा अपव्यय ही नजर आती है। कम पानी में फसलें उगानें की विधियां अभी तक आम किसानों में प्रचलित नहीं हो पाई हैं। सरकारी योजनाओं के तहत लगाए गए ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली भी किसानों की दिशा और दशा नहीं बदल पा रही हैं। अब समय कि माँग है कि हम जल प्रबंधन के लिये वर्षा जल संरक्षण एवं संग्रहण का सहारा लें। यह तभी संभव होगा जब हम सार्थक पहल करें और पूरे विश्वास व लगन के साथ विभिन्न पहलुओं पर काम करें, जैसेः जल प्रदूषण का निवारण, जल सरंक्षण, घरेलू स्तर पर जल संग्रहण, फसल चक्र में बदलाव, जल उपयोग में जागरुकता, खेती के वैकल्पिक तरीके, वर्षा जल संग्रहण, नवीनतम सिंचाई प्रणाली का उपयोग आदि।

खेती में वर्षा जल संरक्षण के उपायः

वर्षा जल का जमीन की विभिन्न परतों में संचय करना, अपवाहित जल को एकंत्रित कर समय–समय पर फसलों की माँग अनुसार सिंचाई के लिए उपयोग करना ही नमी जल संरक्षण है। मृदा एवं जल प्रबंधन में नमी संचय हेतु निम्नलिखित क्रियायें उपयोगी पायी गयी हैं–

1. जैसी जल उपलब्धता वैसा फसल चक्रः

सिंचाई जल की कम सुविधा वाले क्षेत्रों में उन फसलों को उगाना लाभदायक होता है जिन को एक या दो सिंचाई की जरूरत पड़ती है। फसल का चुनाव, जमीन की दशा, सिंचाई जल की उपलब्धता, बरसात आदि के आधार पर ही करनी चाहिए। आमतौर पर देखा जाता है कि जैसे ही किसी नए क्षेत्र में नहर या नलकूप/ट्यूबवैल की सुविधा दी जाती है तो किसान धान, आलू, गन्ना जैसी ज्यादा पानी वाली फसलें लेने लगते हैं। धान सबसे ज्यादा पानी अपव्यय करने वाली फसल है, क्योंकि आमतौर पर जितना पानी धान को दिया जाता है, उतने ही पानी से गेहूँ का 3 गुना, तिलहन का 6 गुना, दलहनों का 8–10 गुना क्षेत्र सींचा

जा सकता हैं। मृदा नमी के आधार पर फसल एवं उसकी किस्म का चुनाव करना चाहिए, कृषि मौसम के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों की फसलों का चुनाव होना चाहिए अन्यथा सिंचाई जल की समय उपलब्धता के आधार पर, कम नमी में ज्वार, बाजरा एवं रागी आदि फसलें सफलतापूर्णक उगायी जा सकती हैं।

2. ग्रीष्मकालीन जुताईः

रबी की फसल की कटाई के बाद एक गहरी जुताई की जाए ताकि वर्षा का अधिक से अधिक पानी खेत में ही रुका रहे तथा खरीफ के बाद उथली जुताई नमी संरक्षण के लिए उपयुक्त होती है। रबी की फसल कटने के बाद खेत की जुताई करने से खेत गर्मी में पूरी तरह सूख जाते हैं तथा हानिकारक कीड़े–मकोड़े मर जाते हैं और वर्षा प्रारम्भ होते ही वर्षा जल जमीन में प्रवेश करने लगता है। यह जुताई लगभग 20 से 30 सें.मी. गहरी मिट्टी पलटने वाले हल या ट्रैक्टर से की जाती है।

3. समतलीकरण एवं मेड़बन्दीः

वर्षा जल के समान वितरण एवं अधिक समय तक प्रक्षेत्र में रोकने के लिए खेतों को समतल करके मेड़बंदी करना आवश्यक है। मेड़बंदी करने से मृदा कटाव रुकता है तथा मृदा नमी एवं मृदा उर्वरता को अधिक समय तक बनाये रखा जा सकता है। सामान्यतः एक मेड़ से दूसरी मेड़ की दूरी 30 सें.मी. रखी जाती है।

4. मेड़–कूंड़ खेतीः

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में फसलों को छोटी मेड़ों पर उगाया जाये तथा कूंड़ को जल संचय हेतु छोड़ दिया जाये।

5. कंटुर रेखीय खेती एवं कंन्टूर निर्माणः

समोच्च रेखाओं के सहारे असमतल खेतों में फसलों की बुवाई कर खेती की जाये तो इससे जमीन के कटाव के साथ–साथ अधिक नमी पौधों को उपलब्ध होती है। खेत में 15 सें.मी. गहरी एवं 20 सें.मी. चौड़ी कूंड का निर्माण 10–15 मीटर के अंतराल से करें, जिससे वर्षा जल इसमें संचित होकर जमीन में पहुंच सके।

6. ढालू स्थानों पर पट्टीदार खेतीः

इस विधि द्वारा एक ही खेत में विभिन्न पट्टियों पर कई फसलें पट्टी के रूप में उगायी जाये तो इस जमीन में नमी का संरक्षण बढ़ता है। इस प्रकार की खेती में कटावरोधी फसलें जैसे लोबिया, मूँग, उर्द, ग्वार, मूँगफली या घास की पट्टी के बीच कटाव सहायक फसल जैसे मक्का, कपास, ज्वार, बाजरा, अरहर को उगाते हैं।

7. मेड़ों या ऊंची पट्टियों पर बुवाईः

समतल खेतों तथा ढालू खेतों में 2–4 मीटर चौड़ी ऊंची–नीची पट्टियों को बनाकर कम पानी चाहने वाली फसलें जैसे, मक्का, उर्द, मूँग आदि की मेंड़ों पर बुवाई करनी चाहिए। रबी में नमी की आवश्यकतानुसार ऊंची व नीची दोनों ही पट्टियों पर सरसों, गेहूँ, जौ, व चना की फसल ली जा सकती है।

8. पलवार का प्रयोगः

जमीन की ऊपरी सतह को फसलों के अवशेषों द्वारा ढ़कने से पानी के बहाव की गति घटती है, कटाव रुकता है, पानी का रिसाव बढ़ता है, वाष्पीकरण कम होता है तथा जमीन में अधिक नमी बनी रहती है। खरीफ की फसलों की अपेक्षा रबी की फसलों में आच्छादन का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

9. जल रिसाव में वृद्धिः

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में इस बात पर जोर दिया जाता है कि वर्षा से उपलब्ध एक–एक बूंद का मृदा के भीतर रिसाव किया जाये और कम से कम पानी सतही जल प्रवाह के रूप में खेत से बाहर न जाये। ऐसा करने के लिये मृदा की संरचना सुधारने पर विशेष ध्यान देना जरूरी है इसके लिये और जमीन की बुवाई से पहले एक बार अच्छी जुताई करने व गुड़ाई करने से जल रिसाव में पर्याप्त सहायता मिलती है।

10. फसल प्रणाली में परिवर्तनः

फसल बुवाई की प्रणाली में (एकल फसल को मिश्रित खेती या कई फसलों को एक साथ बोना) परिवर्तन करके वर्षा जल का संरक्षण तथा उपयोग किया जा सकता है। फसल बुवाई की पद्धति (मेंड पर मक्का या अरहर और कूंड में उर्द या लोबिया या सब्जी या खीरा या ककड़ी) में परिवर्तन करके भी जल का प्रबंधन किया जा सकता है। औसत या कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ की मिट्टी हल्की होती है, कूंड–नाली विधि अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। इसमें खरीफ की फसलों को मेड़ों पर तथा रबी की

फसलों को नाली के क्षेत्र में या कम पानी चाहने वाली फसलों खरीफ की फसलों को मेड़ों पर तथा अधिक पानी चाहने वाली फसलों को नाली में बोया जाता है। इसमें एक सीमित क्षेत्र के वर्षा जल को एकत्र किया जाता है। 250–400 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में घासों के अलावा कम अवधि की दलहन या सस्य वानिकी आधारित फसल चक्र अपनाने चाहिए। अगर वर्षा अवधि अधिक हो तो धान, पटसन, बाजरा, ज्वार आदि फसलों को भी उगाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में 400–625 मि.मी. वार्षिक वर्षा होती है खरीफ के मौसम में पड़ती छोड़कर रबी में संचित मृदा नमी में कम पानी चाहने वाली फसल उगाते हैं या केवल खरीफ की फसल ही लेते हैं।

अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में साधारणतया खाद्यान्न जैसे, जौ, जई, ज्वार, बाजरा आदि, तिलहन जैसे मूँगफली, तिल, अरण्डी, कुसुम, सूरजमुखी, अलसी, सरसों, रामतिल, तारामीरा आदि अथवा दलहन जैसे, उर्द, मूँग मोठ, अरहर, चना, मटर, मसूर, ढ़ैंचा, सनई, ग्वार, सोयाबीन, रेशे वाली फसलें जैसे कपास आदि आसानी से उगाई जा सकती हैं। अगर वार्षिक वर्षा 500–750 मि.मी. होती है तथा अधिक समय तक मृदा नमी बनी रहती है तो उन स्थानों पर अन्तरा सस्य अपनाना चाहिए जैसे ज्वार+अरहर, बाजरा+अरहर, मूँग+बाजरा, ज्वार+मूँग, ज्वार+सोयाबीन, मूँगफली+अरहर, मोटे अनाज+अरहर आदि।

11. असिंचित क्षेत्रों में फसल विविधीकरणः

असिंचित क्षेत्रों में फसल विविधीकरण उत्पादकता की कुंजी है क्योंकि ऐसी स्थिति में कोई न कोई फसल कुछ न कुछ उत्पादन अवश्य दे जाती है। इन क्षेत्रों में फसलों का अनुमोदन ढ़लान स्तर पर निर्भर होता है जैसे पहाड़ियों के ऊपर भागों पर पेड़ व घासें, ऐसे क्षेत्र जहाँ पर 6 प्रतिशत ढ़लान के खेत में जिनकी मृदा उथली हो वहाँ पर घासें, ऐसे क्षेत्र जहाँ 6 प्रतिशत ढ़लान के खेत जिनकी मृदा काफी गहरी हो सीढीनुममा खेती, गहरी मृदा और 1–2 प्रतिशत ढ़लान पर अन्तः फसलीकरण या द्विफसलीकरण और गहरी मृदा वाली भूमि में 1 प्रतिशत ढ़लान के साथ वर्षा ऋतु में परती छोड़कर संचित नमी पर रबी की फसल उगाना या द्विफसलीकरण अपनाना।

12. फसल जल अवरोध परतः

फसलों की कटाई के बाद उनकी जड़ों को खेत में छोड़ देने से सतही जल बहाव में अवरोध उत्पन्न होता है तथा जमीन कटाव कम होता है। इससे जल संरक्षण भी अधिक होता है।

13. खेत का पानी खेत में (इन सिटू वाटर हार्वेस्टिंग)

किसानों को वर्षा जल के संरक्षण हेतु प्रयास करना होगा। जो भी वर्षाजल खेत में गिरता है उसे बहकर बाहर नहीं जाने देना चाहिए। इसके लिए किसानों को स्वंय के खेत पर पानी रोकने हेतु ऐसी संरचनाओं का निर्माण करना होगा जिससे खेत में गिरने वाला पानी खेत में ही जमीन के अंदर की सतहों में चला जावे। खेत की स्थिति के अनुसार जल सोखने वाली संरचनाओं का निर्माण किया भी जा सकता है, वर्षा जल का पानी खेतों में इन्हीं संरचनाओं के माध्यम से जमीन के अंदर की सतहों में संरक्षित रहता है तथा बाद में जरूरत के समय उसका उपयोग किया जा सकता है। अर्थात् खेत में ही कुछ ऐसी तकनीकियाँ अपनाना जिससे वर्षा तथा अपधावन जल की अधिकाधिक मात्रा खेत में ही संचित कर ली जाये, इन सिटू वाटर हार्वेस्टिंग कहलाता है।

14. एकीकृत जल संरक्षण एवं सरकारी प्रयासः

जमीन एवं वर्षा जल का संवर्धन कर निर्जीव कुओं, नलकूपों को जीवित करते हुए भूमिगत जल स्तर में वृद्धि कर जमीन से चिर निरन्तर फसल उत्पादन लेना एकीकृत जल संरक्षण कहलाता है। कृषि कार्यों के लिए जल के संरक्षण हेतु तालाब बनवाने के लिए सरकार सदैव प्रयत्नशील रही है तथा पुराने तालाबों व कुओं के रखरखाव के लिए जल व जमीन संरक्षण हेतु सरकार योजनाएं चला रही है। इन योजनाओं में पुराने तालाबों की खुदाई/गाद निकालना, किनारे ठीक करना, नए तालाब खुदवाना, जमीन कटाव को रोकना व भू–जल को रिचार्ज करना, पौधारोपण एवं घास लगाना आदि कार्य कराये जा रहे हैं। पंचायती राज अधिनियम के तहत ग्राम पंचायतों को अधिकार दिया गया है कि वे गांवों में स्थित तालाब एवं पोखरों की खुदाई कराएं। साथ ही पुराने कुओं की मरम्मत के लिए भी उन्हें निर्देश दिया गया है। गांव में कुओं की मरम्मत तो हो जाएगी और तालाब–पोखरे भी खुद जांएगे, लेकिन उन्हें स्वच्छ रखने की जिम्मेदारी ग्रामीणों की होगी। केंद्र सरकार की और से चलाई जा रही मनरेगा योजना के तहत भी सबसे ज्यादा ध्यान तालाब खुदाई पर ही दिया जा रहा है।

देश में पानी की कुल खपत का लगभग 85 प्रतिशत खेती के काम में आता है, ऐसी स्थिति में इस क्षेत्र में जल सरंक्षण एवं पानी के बचत की बहुत संभावनाएं है। आने वाले 15–20 सालों में पानी के संकट का सामना करना पड़ सकता है, इसलिए अभी से पानी की एक–एक बूंद का इस्तेमाल सोच–समझ कर करना चाहिए। जल संरक्षण में ही आने वाली पीढ़ियों की भलाई है। उपरोक्त पहलुओं पर ध्यान देकर हम न केवल जल की मात्रा बचा सकते हैं अपितु फसलों की पैदावार भी बढ़ा सकते हैं।

भू–जल संग्रहणः

जल का संग्रहण जल की कमी को कम करने के लिए सर्वोत्तम साधन है। भू–जल संग्रहण भूमिगत जल की क्षमता को बढ़ाने की तकनीक है, इसके अन्तर्गत विभिन्न उपायों द्वारा भूमिगत जल की क्षमता बढ़ाकर जल संग्रहण किया जाता है। वर्षा जल संग्रहण के अन्तर्गत वर्षा के जल को रोकने और एकत्र करने के लिए गड्डे, बंधिका आदि का निर्माण किया जाता है। भू–जल संग्रहण के निम्नलिखित लाभ व उद्देष्य हैं

1. बढ़ती हुई जल की मांग को पूरा करना।
2. भू–जल को एकत्र करने की क्षमता व जल–स्तर का बढ़ाना।
3. सड़कों पर जल भराव से मुक्ति।
4. ग्रीष्म काल में जल की आवश्यकता को पूरा करना।

वर्षा जल संग्रहण (रेन वाटर हारवेस्टिंग)

वर्षा ऋतु में जब अधिक वर्षा होती है तो अतिरिक्त जल जो भूमि पर बहने लगता है उसे एकत्रित करना तथा एकत्रित जल को वाष्पीकरण एवं लीचिंग की हानियों से बचाकर फसलोत्पादन के उपयोग में लेना, वाटर हारवेस्टिंग कहलाता है। इस प्रकार से एकत्रित पानी का उपयोग सूखे मौसम में तब किया जाता है जबकि फसलों को सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसके लिए प्लास्टिक, पॉलिथीन की चादर, सोडियम कार्बोनेट सोडियम क्लोराइड का प्रयोग करते हैं। जल संग्रहण का उद्देश्य जिन क्षेत्रों में सफल फसलोत्पादन के लिए वर्षा की मात्रा आवश्यकता से भी कम होती है वहां पर जल संग्रह की विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। जल संग्रह की विधियों को निम्न तीन रुपों में वर्गीकृत किया गया है–

1. छोटे–छोटे जल संभरण में प्रक्षेत्र के बाहर के क्षेत्र से जल अपवाह होने वाले पानी को एकत्रित करना।
2. बाढ़ के समय पानी को एकत्रित करके फसलों को उगाने के लिए उसका प्रयोग करना।
3. प्रक्षेत्र के अन्दर ही जल संग्रह करके उसका प्रयोग जीवन रक्षक सिंचाई के रूप में करना।

वर्षा जल संचयन मुख्य रूप से दो विधियों पर आधारित है पहली विधि में धरातल पर वर्षा जल को रोककर संचयित किया जाता है। यह परंपरगत विधि है जिसके तहत भूमिगत कुएं, तालाब आदि का प्रयोग किया जाता है। दूसरी विधि में भूमिगत जल का रिचार्ज करने की तकनीक सम्मिलित है, जो रेन वाटर हारर्वेस्टिंग की नई अवधारणा है। इस तकनीक में खाईयां खोदना, कुएं खोदना, रिचार्ज कुएं बनाना आदि सम्मिलित है। रिचार्ज कुओं को गहराई में स्थित जल संभरण केंद्रों तक वर्षा जल का रिसाव को पहुंचाने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इससे जल अच्छी तरह से फिल्टर हो जाता है।

खेती में वर्षा जल संग्रहण की विधियां

(अ) शुष्क क्षेत्रों में वर्षा जल संग्रहण

इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा 400 मि.मी. से कम वर्षा होती है (सारणी 1)। इसके अन्तर्गत कानपुर, जालंधर एवं अहमदाबाद की मिलाने वाले त्रिभुज में स्थित राजस्थान मरुस्थल आता है, इसका क्षेत्रफल 0.67 लाख वर्ग कि.मी है शुष्क क्षेत्रों में जल प्रबंधन का उद्देश्य यह है कि फसल के पकने तक के लिए पर्याप्त नमी मिल सके तथा सस्य विधियां ऐसी हों सामान्य गहराई तक जो पानी उपलब्ध हो उसका सदुपयोग करके पेड़–पौधे उग सकें।

शुष्क क्षेत्रों में वर्षा जल संरक्षण प्रविधियां निम्नवत् हैः

1. सतही बहाव आधारित खेती

जल बहाव क्षेत्र को छोटे–छोटे जल संग्रह क्षेत्र में विभाजित कर लिया जाता है जिनका क्षेत्रफल 1–3 हेक्टेयर होता है। इन्हें ऊपर पहाडों की ओर बनाया जाता है ताकि पानी बहकर आसानी से नीचे आ जाये। खेत को जाने वाली नालियों का पक्का कर दिया जाता है जिससे ऊपर के खेतों का अधिक पानी नीचे खेतों में चला जाये।

2. जल प्रसारण

शुष्क प्रदेशों में सीमित वर्षा तथा तूफान आदि आते

रहते हैं। पानी गली बनाकर जल्दी से बह जाता है तथा कालान्तर में समुद्र में पहुँच जाता है। कभी–कभी बाढ़ भी आ जाती है। जिसका पानी धीरे–धीरे बह जाता है, इससे बहुत बड़े क्षेत्र पर भूमि कटाव भी होता है। इन क्षेत्रों में पानी को फैला देना बहुत आसान है। बाढ़ का पानी भी पास के मैदानी क्षेत्रों में फैला दिया जाता है। पानी का फैलाव नाली बाडहे आदि बनाकर या छोटे बांध बनाकर किया जाता है। पेड़ों की बाड़ भी लगाई जाती है जो पानी की प्राकृतिक दिशा बदलकर फैलाव में सहायता करती है।

3. सूक्ष्मकार जल संग्रह क्षेत्र

यदि पेड के किनारे पानी संग्रह की व्यवस्था कर दी जाये तो सूखे की स्थिति में भी पौधा जीवित रहता है। इजराल स्थित नेगेव मरुस्थल में 16 वर्ग मी. के सूक्ष्म जल संग्रह क्षेत्र बनाये जाते हैं। इसके किनारे 15–20 सें. मी. ऊंचाई के सूखे पेड़ लगा दिये जाते हैं। संग्रह क्षेत्र के सबसे निचले भाग में एक गड्ढा बनाया जाता है जिसकी गहराई 40 सें.मी. होती हैं इसमें पेड लगा दिये जाते हैं। यह बेसिन पेड के लिए पानी एकत्र करती है।

सारणी 1: भारत में शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का वर्गीकरण

क्षेत्र	शुष्क क्षेत्र	अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र		उप–शुष्क क्षेत्र
		शुष्क	उपार्द्र	
भौगोलिक आच्छादित क्षेत्र	19 प्रतिष्शत	12 प्रतिशत	25.9 प्रतिशत	21.1 प्रतिशत
औसत वार्षिक वर्षा	500 मि.मी. से कम	500–700 मि.मी.	700–1100 मि.मी.	1100–1600 मि.मी.
फसल अवधि	75 दिनों से कम	75–100 दिन	120 दिन	150 दिन

(ब) अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में जल संग्रहण की तकनीक (Seme-arid region)

इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा 650–750 मि.मी. से कम होती है। यह क्षेत्र पश्चिमी घाट पर्वत के पूर्व का क्षेत्र है जो 0.3 लाख वर्ग कि.मी. में फैला है, इसके अतिरिक्त 06 छोटे विस्तार क्षेत्र हैं जैसे (1) तलिनाडु में कोयमबटूर तथा तिरुनेवेल्ली (2) गुजरात में सौराष्ट्र (3) पश्चिमी बंगाल में पुरुलिया (4) उड़ीसा में कालाहाडी (5) बिहार में लामू एवं उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर जिसका क्षेत्र 0.1 लाख वर्ग कि.मी है।

1. कुँए खोदना

खेती में अधिक व्यास हाथ से कुएं खोद दिये जाते हैं जिनमें पानी भूमि के नीचे से एकत्र होता रहता है। इसे उठाकर सिंचाई की जाती है। परन्तु इन क्षेत्रों में पानी की गुणवत्ता घुलनशील लवणों के कारण सामान्यतः खराब होती है।

2. तालाब

जंगली तथा पहाड़ियों का पानी मैदानी तालाबों में एकत्र होता है। तालाब प्रणाली में एक संग्रह क्षेत्र, भण्डारण की टंकी, टंकी का बांध, पानी बन्द करने तथा खोलने का द्वार पानी निकलने का साधन तथा समावेश क्षेत्र होते हैं। संग्रह क्षेत्र का बहता हुआ पानी टैंक में एकत्र किया जाता है। यह कार्य मैदानी क्षेत्र में बाँध बनाकर किया जाता है। वर्तमान समय में दक्षिण भारत में बड़े–बड़े जल संग्रह टैंक हैं, इनमें सिल्ट एकत्रित होने से पानी का रिसाव भी कम हो जाता है।

3. प्रक्षेत्र तालाब/जलाशय का निर्माण और जीर्णोद्धार

फार्म तालाब का निर्माण पर्वतीय क्षेत्रों में जल प्रवाह मार्ग रोककर, बाँध बनाकर अथवा जल प्रवाह में खाई खोदकर बनाए जाते हैं। परन्तु मैदानी भागों में समतल स्थलाकृति वाली भूमियों में तालाब बनाने का मुख्य उद्देश्य उक्त स्थान पर होने वाली वर्षा की मात्रा का जल संचित हो सके और इस जल का उपयोग फसलों में सूखे के समय किया जा सके। परन्तु इन तालाबों से भी 20 प्रतिशत जल विभिन्न क्रियाओं द्वारा नष्ट हो जाता है। इस जल की हानि को रोकने के लिए तालाब के चारों ओर एवं तलहटी पर अंतः स्रवण अवरोधी पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार के वाष्पीकरण को रोकने के लिए वाष्पीकरण अवरोधी पदार्थो का प्रयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा संचित वर्षा के अतिरिक्त जल को पुनः खेतों तक पहुँचाने की क्रिया का वर्षा जल का पुनःचक्रण है।

4. अतःसव्रण तालाब (परकोलेशन)

छोटी नदियों या बड़ी गली के बहाव को रोक करके पानी तालाब में एकत्र किया जाता है। तालाब का यह पानी मिट्टी में अतःस्रवण के कारण उस क्षेत्र का जल स्तर बढ़ा देता है जिससे कुओं में पानी का स्तर बढ़ जाता है। यद्यपि अतःस्रवण टैंक में जल स्तर कम हो जाता है। यह पानी सिंचाई के लिए काम आता है। इस संरचना को ऐसे स्थान पर बनाया जाना चाहिए जहां पर जमीन में जल को सोखने की क्षमता अधिक हो एवं तालाब के निचले क्षेत्र में खेतों में पर्याप्त मात्रा में कुआं या नलकुप उपलब्ध हो।

5. लाइनों के बीच से जल सग्रंह

जहाँ वर्षा अधिक होती है, जल भराव की संभावना वहाँ अधिक रहती है और फसल को हानि पहुंचती है। यदि नाली में धान और मेंड़ पर मक्का बोई जाये तो दोनों फसलों की उपज बढ़ती है। खेत का अधिक पानी नालियों में भर जाता है और यह जल संग्रह धान के लिए लाभदायक है।

6. चौड़ी क्यारियां एवं फार्म जलाशय

1.05 मी. चौड़ाई की प्रत्येक क्यारी के बाद नाली बनाई जाती है जिसकी चौड़ाई 0.45 मी. होती है इन्हें ब्राड बेड एण्ड फरोज कहते हैं। काली मिट्टी में सूखी बुवाई के बाद इस विधि से पानी देना लाभदायक है, बरसात का अधिक पानी नालियों से बहकर खेत के तालाब में एकंत्रित हो जाता है।

उपरोक्त प्रक्रियाओं का समाकलित उद्देश्य यह होता है कि अपधावन जल को जगह–जगह रोक दिया जाये तथा वर्षा की अधिकाधिक मात्रा खेत में ही शोषित हो जाये तथा प्रयुक्त पलवार अथवा फसल अवशेष के कारण उसका वाष्पीकरण द्वारा कम से कम हानि हो।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारत देश के विभिन्न मौसमी क्षेत्रों एवं प्रदेशों में स्थलाकृति, वर्षा, फसल चक्र इत्यादि की विविधता के वाबजूद यदि किसी भी एक या कई प्राविधियों का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जा सकता है, चाहे शुष्क या अर्द्ध शुष्क क्षेत्र हों या फिर नम क्षेत्र हों सफलतापूर्वक फसल उत्पादन किया जा सकता है। यदि किसान अपने पानी को रोक कर रख सकें तो किसी भी प्रकार का सूखा या वर्षा के अतिक्रम से होने तक उस स्थान से न केवल त्वरीत बचाव सकता है बल्कि दीर्घकालिक प्रयासों के द्वारा जल अत्यता से होने वाली विभिन्न प्रकार की हानियों से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। इस हेतु हमारा यही सुझाव है कि कृषक बन्धुओं को अपने–अपने प्रक्षेत्रों पर जल संचय की देन कोई प्रविधि अपना लेना ही उचित होगा जिससे के फसल उत्पादन में किसी भी हानि से बचे रहें।

जैविक खादः विधि, उपयोग एवं लाभ

विनोद कुमार शर्मा, कपिल आत्माराम चोभे, मंदिरा बर्मन, सर्वेन्द्र कुमार, चिरंजीव कुमावत एवं अभिक पात्रा
मृदा विज्ञान, एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग
भा. कृ. अन. प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110 012

हरित क्रांति के फलस्वरूप अन्न उत्पादन में देश आत्मनिर्भर हुआ परन्तु इसके दुष्परिणाम भी सामने आये जैसे मृदा में कार्बनिक पदार्थों कि मात्रा में कमी, मृदा क्षारियता, मृदा उर्वरता में गिरावट, रसायनों के अवशेष के फलस्वरूप मृदा, जल एवं वायु प्रदूषण तथा मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव। इन सभी समस्याओं से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय जैविक खेती ही है।

जैविक खेती में पोषक तत्व प्रबंधन करने के लिए किसानों को विभिन्न प्रकार की जैविक खेती (केंचुआ खाद, गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, फसल अवशेष आधारित खाद) तथा जीवाणु खाद का प्रयोग अति आवश्यक हो जाता है जिससे फसल उत्पादन तथा उत्पादकता मे गिरावट न हो तथा मृदा की उर्वरा शक्ति बनी रहे।

भारतीय कृषि में जैविक खाद का महत्वपूर्ण स्थान है एवं इनका अधिक से अधिक मात्रा मे प्रयोग कर उर्वरकों की खपत कम की जा सकती है।

जैविक खाद मृदा में मौजूद लाभकारी सूक्ष्म जीवों का वैज्ञानिक तरिकों से चुनाव कर प्रयोगशालाओं में तैयार की जाती है। वायुमंडल के नत्रजन व भूमि के फास्फोरस को पौधों को उपलब्ध कराने वाले जीवाणुओं को जीवित अवस्था मे लिग्नाइट व पिसे हुए कोयले मे मिलाकर जैविक खाद तैयार किया जाता है। जैविक खाद में इन लाभदायक जीवाणुओं की संख्या एक ग्राम में दस करोड़ से अधिक रखी जाती है।

ये जीवाणु निम्न प्रकार के होते हैः

- **राइजोबियम** – यह एक मृदा बैक्टेरिया है जो दलहनी फसलों की जड़ों पर गुलाबी रंग की गाँठे बनाकर उनमे रहते हैं तथा हवा में से नत्रजन लेकर पौधो को उपलब्ध कराते हैं।
- **एजेटोबेक्टर** – यह जीवाणु खाद बिना दलहन वाली फसलों मे उपयोग की जाती है। यह जमीन में स्वतंत्र रूप से रहकर हवा की नत्रजन को ग्रहण कर भूमि मे छोड़ते हैं, जो पौधों को उपलब्ध होती हैं।
- **फास्फेट विलेयक जीवाणु (पी.एस.बी.)** – जीवाणु खाद पी.एस.बी. इसी अघुलनशील फास्फोरस को पौधों को घुलनशील बनाकर उपलब्ध कराता है।
- **एजोस्पाइरिलम कल्चर** – यह जीवाणु खाद खरीफ के मौसम में धान, मोटे अनाज तथा गन्ने की फसल के लिए विशेष उपयोगी है इनके अलावा गेहूँ व जौ की फसल के लिए भी लाभकारी है। इसके प्रयोग से फसल के उत्पादन में 10–12 प्रतिशत वृद्धि होती है तथा 15 से 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नत्रजन की बचत होती है।
- **नील हरित शैवाल** – ये शैवाल मिट्टी के सदृश्य सूखी पपड़ी के टुकड़ों के रूप में होते हैं तथा धान की फसल के लिए जिसमे पानी भरा रहता है विशिष्ट लाभकारी होते हैं। ये सूक्ष्म जीवाणु 20–30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर उपलब्ध कराते हैं तथा फसल की 10–15 प्रतिषत उपज में बढ़ोतरी करते हैं। 10 किलोग्राम मात्रा प्रति हैक्टेयर पानी भरे खेत में छिड़काव के लिए।

जैविक खाद के लाभः

- ये जीवाणु फसलों की पोषक तत्वों की जरूरत को पूरा कर उनकी उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाते हैं।
- ये सूक्ष्म जीवाणु मृदा में मौजूद फास्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों के लिए उपलब्धता बढ़ाते है।
- ये सूक्ष्म जीव कुछ मात्रा में सूक्ष्म आवश्यक पोषक तत्वों जैसे–जिंक, तांबा, सल्फर, लोहा, बोरोन, कोबाल्ट व मोलिबिडिनम इत्यादि पौधो को प्रदान करते हैं।

- ये सूक्ष्म जीवाणु खेती में बचे हुए कार्बनिक अपशिष्टों को सड़ाकर मृदा में कार्बनिक पदार्थ की उचित मात्रा बनाये रखते हैं।
- ये सूक्ष्म जीवाणु पादप वृद्धि करने वाले हारमोन्स, प्रोटिन, विटामिन एवं अमीनो अम्ल का उत्पादन करते हैं तथा यह सूक्ष्म जीवाणु मृदा में पनप रही रोग जनक फफूंद नष्ट कर लाभकारी जीवाणुओं की संख्या मे वृद्धि करते हैं।
- इन जीवाणुओं के प्रयोग से लगभग 15–30 प्रतिशत फसलोत्पादन बढ़ता है और उत्पाद की गुणवता बहुत अच्छी रहती है ।
- इन सूक्ष्म जीवाणुओं के प्रयोग से मृदा की जलधारण शक्ति व उर्वरा शक्ति बढ़ती है जिससे फसलोत्पादन बढ़ता है ।
- ये जैविक खाद प्रत्येक मौसम में प्रति फसल लगभग 20 से 30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर तथा फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जीवाणु प्रति हैक्टेयर लगभग 30 से 40 किलोग्राम फास्फोरस प्रति फसल उपलब्ध कराते हैं ।

जैविक खाद उपयोग की विधि –

जीवाणु खाद का फसल उत्पादन में प्रयोग कई प्रकार से किया जा सकता है जैसे–

क) **बीजोपचार द्वारा**– आवश्यकतानुसार पानी में 150 ग्राम गुड 1 लीटर पानी के हिसाब से घोल कर गर्म करें इसे ठण्डा कर इसमें जीवाणु खाद के तीन पैकेट (एक हैक्टेयर क्षेत्र हेतु) घोलें। अब इस घोल को एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए आवश्यक बीज की मात्रा पर छिड़कते हुए हल्के हाथ से बीजों को पलटते जावे, जिससे बीजों के ऊपर जीवाणु खाद की एक बारीक परत चढ़ जाए। अब बीजो को किसी छायादार स्थान पर सुखाकर शीघ्र ही बुआई करनी चाहिए ।

ख) **जड़ों के उपचार द्वारा**– फल, सब्जियों एवं अन्य पौधों की जड़ों को रोपाई से पूर्व जीवाणु खाद के घोल में लगभग 15 मिनट तक डुबोकर रखे तथा बाद मे इनकी भूमि में रोपाई करनी चाहिए।

ग) **भूमि उपचार**– जीवाणु खाद को नम मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिलाकर पूरे खेत में सायंकाल छिटक कर सिंचाई कर देनी चाहिए।

सावधानियाँ:

- पैकेट पर लिखी फसल के लिए, पैकेट पर अंकित अंतिम तिथि से पूर्व ही जीवाणु खाद का प्रयोग करें।
- जैविक खाद को अत्यधिक ठंड, गर्मी एवं धूप से बचाकर रखना आवश्यक है।
- जैविक खाद को रासायनिक उर्वरक एवं नाशकों के साथ नहीं मिलाना चाहिए।
- जैविक खाद को गुड के गर्म घोल में नहीं मिलाना चाहिए अन्यथा जीवाणु मर जाएग।
- बीज को कवकनाशी, कीटनाशी एवं जैविक खाद सभी से उपचारित करना हो तो इसी क्रम में प्रयोग में लेना चाहिए।
- जैविक खाद से उपचारित बीज को छाया में सुखाना चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट खादः

वर्मी कम्पोस्ट, केंचुआ की मदद से निर्मित जैविक खाद है, जिसे किसान भाई स्वयं बना सकते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि :

सर्वप्रथम उपयुक्त स्थान जिसमें उपयुक्त नमी एवं तापमान निर्धारित किये जा सकें, का चयन कर इसके ऊपर एक छप्पर या अस्थाई शेड बनाया जाता है। शेड की लम्बाई चोड़ाई वर्मी टेंक की संख्या पर निर्भर करती है। वर्मी टेंक की मानक आकार 1 मी. चौड़ा, 0.5 मी. गहरा तथा 10 मी. लम्बा होता है।

उपयोग सामग्री के रूप में कृषि अवशेष, जलकुंभी, केले एवं बबूल की पत्तियां, अन्य हरी एवं सूखी पत्तियां, पेड़ों की हरी शाखायें, घास, सड़ी–गली सब्जियां एवं फल, घरेलू कचरा एवं पशुओं का गोबर आदि को उपयोग में लाया जाता है।

नमीयुक्त वानस्पतिक कचरे में गोबर का घोल मिलाकर 15 दिनों तक सड़ाया जाता है और वर्मी टेंक में इसकी 6 इंच की तह लगा देते हैं । इस 6 इंच की पर्त पर लगभग 6 इंच तक पका हुआ गोबर डाला जाता है। इस गोबर की तह पर 500–1000 केंचुए प्रतिवर्गमीटर के हिसाब से डाले जाते हैं। वर्मी कम्पोस्टिंग के लिए केंचुआ की सर्वाधिक उपयुक्त प्रजातियां आइसिनिया फोयटिडा, यूड्रिलस यूजिनी एवं परियोनिक्स एक्सावेटस हैं।

इस परत पर 1 फीट ऊंची अधसड़े एवं बारीक वानस्पतिक कचरे की तह लगा दी जाती हैं। इस प्रकार ढेर की ऊंचाई 2–3 फीट तक हो जाती हैं। अब इस डोम के आकार के ढेर को जूट के बोरों से ढक दिया जाता है। शेड में सदा अंधेरा बना रहना चाहिए क्योंकि अंधेरे में केंचुए ज्यादा सक्रिय रहते हैं इसलिये शेड के चारों ओर घास–फूंस या बोरे लगा देने चाहिए। बोरों के ऊपर नियमित रूप से आवश्यकता अनुसार पानी का छिड़काव किया जाता है, ताकि टेंक में नमी बनी रहे। टेंक के ढेर को लगभग 25–30 दिन के बाद हाथों या लोहे के पंजे की सहायता से धीरे–धीरे पलटते हैं। जिससे वायु का संचार तथा ढेर का तापमान भी ठीक रहता है। यह क्रिया 2–3 बार दोहरायी जाती है। टेंक के अन्दर का तापमान 25–30 डिग्री सेंटीग्रेड एवं नमी 30–35 प्रतिशत रहनी चाहिए। पानी के उचित प्रयोग से तापमान एवं नमी को नियन्त्रित किया जा सकता है।

मानक आकार के टेंक के लिए प्रतिदिन लगभग 30–90 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। लगभग 60–75 दिनों में वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाती है। इस समय ढेर में चाय की पत्ती के समान केंचुए के द्वारा निकाली गई कास्टिंग दिखाई देंगी। इस खाद को शेड से निकाल कर पालीथीन की चादर पर रखा जाता है। 2–3 घण्टें के पश्चात् केंचुए पॉलीथीन की सतह पर आ जाते हैं। वर्मी कम्पोस्ट को अलग कर नीचे एकत्र हुए केंचुओं को एकत्रित कर पुनः वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए प्रयोग करें। इस खाद को छाया में सुखाकर नमी कम कर लेते हैं तथा उसे बोरी में भरकर 8–12 प्रतिशत नमी में एक साल तक भण्डारण कर सकते हैं।

एक किलोग्राम वजन में लगभग 1000 वयस्क केंचुए होते हैं। एक दिन में 1 किलोग्राम वयस्क केंचुए लगभग 5 किलोग्राम कचरा को खाद में बदल देते हैं। ऊपर बताई गई विधि से मात्र 60–75 दिन में 10X1X0.5 मीटर टैंक से लगभग 5–6 कुंटल वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाती है। जिसके लिए लगभग 10–12 कुंटल कच्चा पदार्थ लगता हैं।

वर्मी कम्पोस्ट प्रयोग करने के लाभ :

- वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि करता है तथा भूमि में जैविक क्रियाओं को निरन्तरता प्रदान करता है।
- वर्मी कम्पोस्ट का भूमि में प्रयोग करने से भूमि भूरभूरी एवं लंबे समय तक उपजाऊ बनती हैं। भूमि में केंचुओं की सक्रियता से पौधों की जड़ों के लिए उचित वातावरण बनता है जिससे उनका अच्छा विकास होता है।
- वर्मी कम्पोस्ट खेत में दीमक एवं अन्य नुकसान करने वाले जीवाणुओं को नष्ट कर देती है। इससे कीटनाशक की लागत में कमी आती हैं।
- इसके प्रयोग से भूमि में लाभप्रद सूक्ष्म जीवाणुओं जैसे नत्रजन और फास्फोरस स्थिरीकरण, जीवाणु, प्रोटोजोआ, फफूंदी आदि की संख्या में वृद्धि होती है, जो पौधों की भूमि में उपलब्ध भोज्य पदार्थ को सरल रूप में उपलब्ध कराते हैं।
- वर्मी कम्पोस्ट में नत्रजन की मात्रा 1 से 5 प्रतिशत, फॉस्फोरस 1 से 1.5 प्रतिषत तथा पोटाश 1.5 से 2.0 प्रतिशत तक पोषक तत्व पाये जाते हैं।
- केंचुए के विष्ठा में पेरीट्रापिक झिल्ली होती है, जो भूमि में धूलकणों से चिपक कर भूमि से वाष्पीकरण रोकती है।

वर्मी कम्पोस्ट बनाते समय रखी जाने वाली सावधानियाँः

- कभी भी आक तथा धतुरे के पत्ते इस मिश्रण में ना डालें अन्यथा इसके जहरीले प्रभाव से केंचुए मर सकते हैं।
- वर्मी कम्पोस्ट का शेड छायादार जगह पर ही बनाया जाना चाहिए तथा बेड़ पर अंधेरा बनाए रखना चाहिए क्योंकि केंचुए अंधेरे में ज्यादा क्रियाशील होते हैं।
- सड़े–गले कार्बनिक पदार्थ व गोबर को अच्छी प्रकार मिलाना चाहिए ताकि कार्बन–नाइट्रोजन का अनुपात संतुलित रहें।
- कभी भी ताजा गोबर इस्तेमाल नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे निकलने वाली गर्मी (गैस) से केंचुए मर सकते है एवं दीमक का आक्रमण हो सकता है। इस प्रकार गोबर 10–15 दिन पुराना होना चाहिए।
- वर्मी कम्पोस्ट बेड का तापमान 25–30 डिग्री सेल्सियस तथा नमी 30–35 प्रतिशत तक बनाए रखनी चाहिए।

- कठोर टहनियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा खरपतवार अवशेषों को भी फूल आने के पूर्व ही काम में ले लेना चाहिए।
- खरपतवार तथा कूड़े–कचरे में प्लास्टिक, कांच तथा पत्थर आदि नहीं होने चाहिए।
- वर्मी कम्पोस्ट बेड को तैयार कर लेने के 5–6 दिन बाद ही केंचुए छोड़े जाने चाहिए क्योंकि यदि छिड़काव के दौरान गड्ढ़े में पानी अधिक हो गया तो गड्ढा पक्का होने के कारण रिसेगा नहीं जिससे केंचुए मर सकते हैं।
- गड्ढों को चीटियों, कीड़ों–मकोड़ो, मुर्गियों, कौओं तथा पक्षियों आदि से सुरक्षित रखें।

जैविक खेती में जैविक खादों का योगदानः

- जैविक खादों के प्रयोग से मृदा का जैविक स्तर बढ़ता है, जिससे लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है और मृदा काफी उपजाऊ बनी रहती है।
- जैविक खाद पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ प्रदान कराते हैं, जो मृदा में मौजूद सूक्ष्म जीवों के द्वारा पौधों को मिलते हैं जिससे पौधों स्वस्थ बनते हैं और उत्पादन बढ़ता है।
- रासायनिक खादों के मुकाबले जैविक खाद सस्ते, टिकाऊ तथा बनाने में आसान होते हैं।
- इनके प्रयोग से मृदा में ह्यूमस की बढ़ोतरी होती है व मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है।
- पौध वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश तथा काफी मात्रा में गौण पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक खादों के प्रयोग से ही हो जाती है।
- कीटों, बीमारियों तथा खरपतवारों का नियंत्रण काफी हद तक फसल चक्र, कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं, प्रतिरोध किस्मों और जैव उत्पादों द्वारा ही कर लिया जाता है।
- जैविक खादें सड़ने पर कार्बनिक अम्ल देती हैं जो भूमि के अघुलनशील तत्वों को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर देती हैं, जिससे मृदा का पी–एच मान 7 से कम हो जाता है। अतः इससे सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। यह तत्व फसल उत्पादन में आवश्यक है।
- न खादों के प्रयोग से पोषक तत्व पौधों को काफी समय तक मिलते हैं। यह खादें अपना अवशिष्ट गुण मृदा में छोड़ती हैं। अतः यह एक फसल में इन खादों के प्रयोग से दूसरी फसल को लाभ मिलता है। इससे मृदा उर्वरता का संतुलन ठीक रहता है।

मृदा उर्वरता बनाये रखने के लिये सुझावः

- उर्वरकों का प्रयोग हमेशा मृदा परीक्षण के आधार पर एवं फसल विशेष की संस्तुति के अनुसार ही करें।
- उर्वरक प्रबन्धन एक फसल में न करके पूरे फसल चक्र में अपनाएं।
- फसल चक्र में हरी खाद, फसलों के अवशेष तथा दलहनी फसलों का समावेश अवश्य करें।
- दलहनी फसलों में जैविक उर्वरकों का प्रयोग अवश्य करें।
- फसल चक्र में फसलों का चुनाव इस प्रकार करें कि प्रथम फसल से बचे हुये पोषक तत्वों का सही उपयोग हो सके एवं मृदा से पोषक तत्वों का सही अवशोषण हो सके।
- उर्वरकों का प्रयोग हमेशा संतुलित रूप में करें जिससे उर्वरक उपयोग क्षमता में वृद्धि हो सकें।
- सघन खेती में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन अपनाएं जिसमें उर्वरकों के साथ गोबर की खाद, हरी खाद, फसल अवशेषों एवं जैविक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है।
- नत्रजन उर्वरकों का प्रयोग कई बार में करें। फास्फोरस का प्रयोग रबी वाली फसलों में करें। फसल चक्र के साथ उर्वरक चक्र भी अपनाये जिससे सही उर्वरक उपयोग क्षमता आ सकें।
- जैविक खादों का प्रयोग सही समय, सही विधि एवं सही साधन से करें।

अतः सक्षिप्त में कह सकते है कि मृदा उर्वरता सबसे महत्वपूर्ण पूंजी है। अगर मृदा स्वस्थ होगी तो अधिक फसल उपज ले सकेंगे। साथ ही साथ बढती जनसंख्या तथा घटते हुये खाद्यान्न उत्पादन के बीच सन्तुलन स्थापित कर सकेंगे।

पोषण सुरक्षा बढ़ाने में दालों की भूमिका

वी संगीता, पी वेंकटेश, प्रेमलता सिंह, सत्यप्रिय, सीताराम,
गिरिजेश सिंह महरा, वि लेनिन एवं एन वी कुंभारे
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

सारांश

भारत वर्ष में 37 प्रतिशत बच्चे कुपोषण की समस्या से ग्रस्त है कुपोषण की चुनौतीपूर्ण समस्या को दालों के उचित सेवन से कुछ हद तक कम किया जा सकता है क्योंकि दाले प्रोटीन और ऊर्जा से भरपूर होती है। जो लोग पशुजन्य प्रोटीन का प्रयोग अपने भोजन में नहीं करते, उनके लिए दालें प्रोटीन का मुख्य स्रोत है इस लेख के द्वारा हम इसी संदर्भ में विश्लेषण करने का प्रयत्न कर रहे है इसमें हम अन्य खाद्यान्नों के अनुपात में दालों के उत्पाद, पैदावार और दालों के लिए प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्रफल, का विश्लेषण करेंगे। हालांकि खाद्य अनाज के उत्पादन की तुलना में दालों का उत्पादन कम होता है क्योंकि दोनों की पैदावार में अंतर देखने को मिलता है। पोषक तत्वों के सेवन में यह देखने को मिला है की प्रोटीन का सेवन कम हो रहा है और ऊर्जा और वसायुक्त भोजन का सेवन अधिक हो रहा है पिछले एक दशक में दालों का सेवन कम होने से इसमें मिलने वाले पोषक तत्वों में भी कमी आई है। दालों का उत्पादन बढ़ाने और कम कीमत पर उपलब्ध कराने के लिए सख्त नियम बनाए जाने चाहिए।

भारत में कृषि भूमि का प्रयोग– भारत में 1950–51 और 2011 –11 में कुल भूमि के प्रयोग का नमूना दिखाया गया है । 1950–51 में कुल भूमि के 42 प्रतिशत हिस्से पर ही कृषि की जाती थी जोकि 2010–11 में बढ़कर 46 प्रतिशत हो गयी है। इसी प्रकार वन के अन्तर्गत आने वाली भूमि भी 14 प्रतिशत से बढ़कर 23 प्रतिशत हो गयी है। वही दूसरी और बंजर भूमि और जो भूमि कृषि के लिए प्रयोग नहीं की जाती थी, उसकी मात्रा घटकर 8 प्रतिशत से 23 प्रतिशत रह गयी है।

दालों के उत्पादन में परिवर्तन– सारणी–1 में दालों और खाद्यान्नों के उत्पादन क्षेत्र और उत्पादकता का वर्णन किया गया है। सन 1970–71 से 2013–14 तक दालों के उत्पादन के क्षेत्र में काफी उतार–चढ़ाव देखने को मिला। 1970–71 में दालों के उत्पादन के लिए 23 मिलियन हेक्टर क्षेत्रफल का प्रयोग किया गया जाता था जोकि धीरे–धीरे बढ़कर 25 मिलियन हेक्टर हो गया था। 2000–01 में इसमें कुछ गिरावट दर्ज की गई, परन्तु 2010–11 में दालों का उत्पादन अपने उच्चतम स्तर (26 मिलियन हेक्टर) पर पहुँच गया। दालें खरीफ और रबी दोनों मौसम में उगाई जाने वाली फसल है अध्य्यन के दौरान यह देखा गया है कि 2000–01 को छोड़कर बाकी सभी वर्षों में रबी दालों की उत्पादकता खरीफ दालों से अधिक है ।

यह स्पष्ट है कि 1970–71 से 2013–14 तक खरीफ दालों के उत्पादन के लिए प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्रफल में मामूली (लगभग 0.6 प्रतिशत) मिलियन हेक्टर की बढ़ोत्तरी दर्ज कि गई है। जबकि रबी दालों के क्षेत्रफल में उल्लेखनीय (लगभग 2 मि. हे.) कि बढ़ोत्तरी हुई है। सभी खाद्यान्नों के उत्पादन के लिए लगभग 124 मि.हे. क्षेत्रफल इस्तेमाल किया गया है। जोकि पहले 2 मि.हे. से भी कम था। इससे पता चलता है कि खाद्यान्नो के उत्पादन में जो भी वृद्धि हुई है वह दालों के उत्पादन में ही हुई है। कुछ दूसरे खाद्यान्नों कि जगह भी दालों का उत्पादन किया जाने लगा था। पिछले चार दशकों के विश्लेषण से साफ पता चलता है कि दालों के क्षेत्र में 18 से 20 प्रतिशत कि बढ़ोत्तरी हुई है। यह सरकार द्धारा चलाई गई उत्पादकता बढ़ाने के लिए चलाई गई विभिन्न परियोजनाओं जैसे– आयलसिड और पलसिस व फूड सिक्योरिटी मिशन के द्धारा ही संभव हुआ है।

तालिका–1 प्रकट करती है की 1970–71 से 2013 –14 तक दालों का उत्पादन काफी (11.8 से 19.3 मिलियन टन) बढ़ा है। पिछले चार दशकों में दालों के उत्पादन में 64 प्रतिशत बढ़त देखने को मिली है जबकि दाल उत्पादन के लिए प्रयोग किये जाने वाले क्षेत्र में 11 प्रतिशत की ही बढ़ोतरी हुई है हालांकि बाकि खाद्यान्नों के उत्पादन की तुलना में दालों का उत्पादन काफी कम रहा ।

तालिका 1: वर्ष 1970–71 से 2013–14 तक भारत में दलहनों का क्षेत्र, उत्पादकता और उत्पादन की प्रवृत्ति

विशेष	1970 –71	1980 –81	1990 –91	2000 –01	2010 –11	2012 –13	2014 –15	2015 –16	2016 –17
क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर)									
दलहन	22.6	22.5	24.7	20.3	23.3	26.4	24.5	23.3	25.2
शेयर (प्रतिशत)	18.2	17.8	19.3	16.8	19.2	20.8	19.6	19.3	20
खरीफ	9.5	10.4	11.5	10.6	10.6	12.3	11.2	10	10.1
रबी	13.1	12.1	13.2	9.7	12.7	14.1	13.3	13.3	15.1
कुल खाद्यान	124.3	126.7	127.8	121	121.3	126.7	124.8	120.8	126
उत्पादन (मिलियटन)									
दलहन	11.8	10.6	14.3	11	14.7	18.2	17.1	18.4	19.3
शेयर	10.9	8.2	8.1	5.6	6.7	7.4	6.6	7.1	7.3
खरीफ	3.9	3.8	5.4	4.4	4.2	7.1	6.1	5.9	6
रबी	7.9	6.8	8.9	6.6	10.5	11.1	11	12.4	13.3
कुल खाद्यान	108.4	129.6	176.4	196.8	218.1	244.5	259.3	257.1	264.8
पैदावार (कि.ग्रा./हैक्टर)									
दलहन	524	473	578	544	612	625	659	630	691
खरीफ	410	361	471	417	449	557	478	397	578
रबी	607	571	672	604	751	688	804	823	790
कुल खाद्यान	872	1023	1380	1626	1756	1860	1909	1798	1930

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, 2014

यह भी देखा गया है की रबी दालों का उत्पादन खरीफ दालों से अधिक था। तालिका 1 के अध्ययन से यह पता चलता है कि 1970–71 में दालों का उत्पादन 524 कि. ग्रा./हे. था जो 2013 –14 में बढ़कर 691 कि.ग्रा./हे. हो गया है। सभी खाद्यान्नों के उत्पादन में लगभग दुगुनी बढ़ोत्तरी देखने को मिली जोकि 1970–71 में 872 कि. ग्रा./हे. थी और 2013–14 में 1930 कि.ग्रा./हे. हो गयी है। इसे देखकर पता चलता है कि खाद्यान्नों कि तुलना में दालों का उत्पादन कम है ,जिसकी आने वाले समय में और बढ़ने कि संभावना है ।

मुख्य दालों का उत्पादन प्रकट करती हैं दालों में चना और तुर मुख्य दाले हैं जोकि दालों के उत्पादन का 50 प्रतिशत है सभी दालों के उत्पादन का 40 प्रतिशत हिस्सा चना है, अध्ययन के दौरान देखा गया है कि 2012 –13 में चने का उत्पादन 48 प्रतिशत तक बढ़ गया है। जबकि तुर दाल का उत्पादन 17 लाख टन से बढ़कर 31 लाख टन हो गया था। इसके बावजूद सभी दालों के कुल उत्पादन में तुर के हिस्सा (2 प्रतिशत से 17 प्रतिशत) हो गया था।

दालों की फसल और सिंचाई– जैसाकि पहले भी उल्लेख किया गया है कि दूसरे खाद्यान्नों कि तुलना में दालों कि पैदावार कि गति कम थी। जिसका एक मुख्य कारण इसे कम क्षेत्रफल पर उगाना भी है आमतैर पर दाले सीमांत पर्यावरण में उगाई जाती हैं और ज्यादातर वर्षा द्वारा ही सिंचित होती है, या इनकी सिंचाई कम हो जाती है। दालों को कम उत्पादकता वाली भूमि और देखभाल के साथ ही उगाया जाता है। इसके बावजूद भी कुछ मात्रा में दालों की पैदावार देखा जा सकती है। दाल के पौधे पर फूल आने के समय और फली भरने के समय यदि वर्षा

नहीं होती तो इसका सीधा असर दालों की उत्पादकता पर दिखता। पड़ता है। इसलिए दालों में शोध का प्रभाव ज्यादा नहीं

तालिका 2 : मुख्य दलहनों का उत्पादन

फसल	1950 –51	1960 –61	1970 –71	1980 –81	1990 –91	2000 –2001	2010 –11	2011 –12	2012 –13
दलहन	8.41	12.7	11.82	10.63	14.26	11.08	18.24	17.09	18.45
चना	3.65	6.25	5.2	4.33	5.36	3.86	8.22	7.7	8.88
शेयर (प्रतिषत)	43.4	49.2	44	40.7	37.6	34.8	45.1	45.1	48.1
अरहर	1.72	2.07	1.88	1.96	2.41	2.25	2.86	2.65	3.07
शेयर (प्रतिषत)	20.5	16.3	15.9	18.4	16.9	20.3	15.7	15.5	16.6
अन्य दलहन	3.04	4.38	4.74	4.34	6.49	4.97	7.16	6.74	6.5
शेयर (प्रतिषत)	36.1	34.5	40.1	40.8	45.5	44.9	39.3	39.4	35.2

स्रोतः अर्थशास्त्र और आंकड़ा निदेशालय कृषि एव सहकारिता विभाग

तालिका 3 : भारतवर्ष में दलहनों का सिंचित क्षेत्र

फसल	1950–51	1990–91	2000–01	2010–11
चना	12.5	20.5	30.9	29.7
अरहर	0.5	5.5	4.2	4
कुल दलहन	9.4	10.5	12.5	14.8

स्रोतः अर्थशास्त्र और आंकड़ा निदेशालय कृषि एव सहकारिता विभाग

इसी संदर्भ में सिंचित दालों के क्षेत्र को तालिका 3 में प्रस्तुत किया गया है । यह साफ प्रकट करती है की 1950–51 में दालों के केवल 9 प्रतिशत क्षेत्र की ही सिंचाई की जाती थी। जो 2010–11 में बढ़कर 15 प्रतिशत हो गई है। सभी दालों में चने की सिंचाई सबसे ज्यादा की जाती है और इसके उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी देखने को मिलती है। जोकि 2010–11 में 30 प्रतिशत थी दूसरी प्रमुख दाल तुर की 1950–51 में (0.5 प्रतिशत) क्षेत्र पर ही सिंचाई की जाती थी जोकि 2010–11 में बढ़कर 4 प्रतिशत हो गयी है। यह सिंचाई और पैदावार में सहःसंबंध पाया गया है जहाँ चने की सिंचाई की जाती है। वही पर उसकी पैदावार अधिक पायी जाती है जबकि तुर की सिंचाई और पैदावार दोनों ही कम पायी गई है

दाले और पोषण – पिछले एक दशक में स्रोत के आधार पर पोषक तत्वों के सेवन का वर्णन तालिका 4 में किया गया है। पिछले दो दशकों में ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रो में ऊर्जा युक्त भोजन का सेवन बढ़ा है। ग्रामीण क्षेत्रों में 1231 से बढ़कर 2153 कि. कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2139 से बढ़कर 2144 हो गया है। ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में 20 प्रतिशत ऊर्जा का स्रोत दाले है वसायुक्त भोजन का सेवन सबसे ज्यादा 20 प्रतिशत बढ़ा है पिछले एक दशक में देखा गया है कि सभी पोषक तत्वों का सेवन ग्रामीण क्षेत्रों कि अपेक्षा शहरी क्षेत्रो में अधिक बढ़ा है। दोनों ही क्षेत्रो में दालों से वसा कि प्राप्ति 1999–00 में 1 प्रतिशत ज्यादा थी और 2009–10 में 1 प्रतिशत कम हो गई

तालिका 4: भारत में दलहनों से प्राप्त होने वाले पोषक तत्व

पोषक तत्वो का सेवन	ग्रामीण 1999–00	शहरी 2009–10	अंतर (प्रतिशत)	1999–00	2009–10	अंतर (प्रतिशत)
दलहनों से प्राप्त ऊर्जा (किलो केलोरी)	96 (4.50)	77 (3.58)	–19.85	115 (5.38)	92 (4.29)	–19.72

ऊर्जा का कुल सेवन	2131	2153	1.00	2139	2144	0.22
(किलो केलोरी)						
दलहनों के द्वारा	0.52	0.45	–13.7	0.63	0.54	–14.65
प्राप्त वसा (ग्राम)	(1.45)	(1.05)	(1.26)	(0.99)		
कुल वसा का सेवन (ग्राम)	35.77	42.73	19.45	50.13	54.67	9.05

स्रोतः राष्ट्रीय सैंपल सर्वे 68जी राउंड, 2011–12.

दलहनों से प्राप्त	6.4	4.94	–22.78	7.65	5.98	–21.82
प्रोटीन (ग्राम)	(10.93)	(8.51)		(13.09)	(10.36)	
प्रोटीन का	58.57	58.02	–0.93	58.45	57.74	–1.22
कुल सेवन (ग्राम)						

शाकाहारी लोग और जो गरीब लोग, जो महंगे पशुजन्य प्रोटीन युक्त भोजन को खरीदने में असमर्थ हैं, उनके लिए दाले प्रोटीन का एक मुख्य स्रोत है। भारत में अन्य देशों कि तुलना में शाकाहारी लोग अधिक है जिसकी वजह से दालों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, अध्ययन के दौरान यह पाया गया है। कि ग्रामीण क्षेत्र के लोग प्रतिदिन 6 से 5 ग्रा. (23 प्रतिशत) और शहरी क्षेत्र के लोग प्रतिदिन 8 से 6 ग्रा. (22 प्रतिशत) तक दालों का सेवन करते हैं। दालों का प्रति व्यक्ति सेवन भी कम ही पाया गया है ।

विभिन्न भोज्य समूह पर होने वाले खर्च को आकृति 3 में दर्शाया गया है। इसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में पहले शहरी क्षेत्रों कि तुलना में सेवन थोड़ा ज्यादा किया जाता था। परन्तु अब शहरी क्षेत्रों में इसका सेवन (6.3 प्रतिशत से 6.8 प्रतिशत) बढ़ गया है और ग्रामीण क्षेत्रों में इसका सेवन (5.9 प्रतिशत से 5.7 प्रतिशत) कम हो गया है ।

निष्कर्ष– इस अध्ययन में दालों के क्षेत्र, उत्पादन और पैदावार कि बाकी खाद्यान्नों के साथ तुलना कि गई है । यह पाया गया हैं कि दालों के उत्पादन का क्षेत्र बढ़ाने के बावजूद भी बाकि खाद्यान्नों कि तुलना में दालों के उत्पादन में कम बढ़ोत्तरी हुई है। पिछले चार दशकों में कुल खाद्यान्नों और दालों में पैदावार का बडा अंतर देखने को मिला है। दालों कि उत्पादकता को प्रभावित करने वाला मुख्य कारक सिंचाई है, तथापि इस ओर ज्यादा ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। जिसका सीधा असर दालों कि पैदावार पर पड़ता है। अध्ययन में यह भी देखा गया है कि प्रोटीन के अलावा दूसरे पोषक तत्व ऊर्जा ओर वसा का सेवन भी बढ़ा हैं। पोषक तत्वों कि प्राप्ति में दालों का योगदान काफी कम है। इसलिए दालों के उत्पादन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और लोगो को दालों के महत्त्व के बारे में जागरूक करना चाहिए ।

संदर्भः–

आर्थिक सर्वेक्षण 2014–15, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।, नई दिल्ली

कृषि सांख्यिकी वार्षिक पुस्तक, 2013, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशाल, कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

प्याज की समेकित नाशीजीव प्रबंधन रणनीतियाँ

मनोज चौधरी, एच. आर सरदाना एवं मलखान सिंह गुर्जर
1, 2 समेकित नाशिजीवी प्रबंधन संस्थान, नई दिल्ली
3 भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली

प्याज एक बहुत ही महत्वपूर्ण सब्जी फसल है जो "रसोई की रानी" के नाम से मशहूर है जिसकी पूरे देश में व्यापक रूप से खेती की जाती है। यह ठंड के मौसम की फसल है और इसकी मजबूती की वजह से इसे आसानी से उगाया जा सकता है। कीटों, रोगों और सूत्रकृमीयों का बढ़ता प्रभाव संभावित उत्पादन के लिए प्रमुख अवरोधक है जिसके कारण कभी–कभी उपज में काफी नुकसान होता है। विभिन्न मौसमों जैसैः खरीफ, देर खरीफ और रबी के दौरान इसकी खेती के कारण, विशेषकर दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में विभिन्न मौसमों के दौरान आर्थिक हानि बदलती रहती है।

नाशीजीवों के कारण हुए नुकसान को कम करने के लिए किसान रासायनिक कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग पर अत्यधिक निर्भर हो रहे हैं और सब्जी उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों द्वारा एक सत्र में प्याज में 8 –10 छिड़काव करना आम प्रचलन हैं। इस परिदृश्य में, प्याज में कीटनाशक अवशेषों की मात्राः उच्च स्तर पर पाई जा रही है जो केवल उपभोक्ताओं के लिए ही नहीं खतरनाक साबित हो रही है बल्कि निर्यात की गुणवत्ता को भी प्रभावित कर रही है। रसायनों पर अत्यधिक निर्भरता के परिणामस्वरूप प्रतिरोधकता, पुनरुत्थान, पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं के अतिरिक्त, किसानों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव देखे जा रहें हैं, जो नाशीजीवों और मित्र कीटों के बिच नाजुक संतुलन को प्रभावित करता है। इन सभी समस्याओं को कम करने और किसानों में जागरूकता पैदा करने हेतु प्याज में एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन रणनीति विकसित एंव प्रमाणीत की गयी है।

कीट नाशीजीव

थ्रिप्सः थ्रिप्स छोटा, पतला, तेजी से चलने वाला, पीले से भूरे रंग के झालरदार पंख वाले होते हैं। निम्फ पंखहीन होते हैं। प्यूपीकरण मिट्टी में होता है। थ्रिप्स प्याज का सबसे गंभीर कीट हैं। पूरे देश में जहाँ प्याज की फसल उगाई जाती है, वहाँ पर यह कीट आम है। कभी कभी बल्ब फसल में थ्रिप्स आक्रमण से 50–60 प्रतिशत तक नुकसान होता है। यह हरे पत्तियों के बीच पाया जाता है जहाँ जल्दी उभरती हुई पत्तियों का रस चूसता हैंए लघु, सफेद चाँदी जैसे धब्बे सभी पत्तियों पर देखे जा सकते हैं। प्रभावित पौधों में मुड़ी पत्तियों के साथ वृद्धि रूक जाती है। अगर संकमण शरुआती चरण में होता है तो बल्ब गठन पूरी तरह से रुक जाता है और पौधे धीरे–धीरे मर जाते हैं।

हेड–छिद्रक : यह छिद्रक उत्तरी भारत में प्याज की बीज फसल का एक गंभीर कीट है। इसके लार्वे फूलों की डंडी काट कर डंठल को खाते हैं। कई फूल डंठल एक लार्वा से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। बल्ब की फसल भी लार्वे द्वारा काटने और हवाई भागों के खाने से क्षतिग्रस्त होती है। पूरी तरह से विकसित लार्वा हरा रंग का 35–45 मि.मी. लंबा व शरीर पे गहरे भूरे ग्रे रंग की धारियों होती है। लार्वा पुष्पदंड के अंदर या मिट्टी में प्यूपा बनाता है।

प्याज मक्खीः पूर्ण विकसित मगोट छोटे, भूरे–लाल, सफेद रंग का लंबाई में लगभग 8 मि.मी. का होता हैं। मगोट बल्बों में छिद्र करके पौधे को मृदु और पीले बना देते हैं। यह खेत में कुम्हलाने और भंडारण में सड़न पैदा करते हैं। इसके नुकसान से बेसिलस कारोलोवोरुस का आक्रमण हो जाता है जो प्याज में नरम विगलन पैदा करता है। तीसरी पीढ़ी में कीट अक्सर प्याज को काटने से पहले संक्रमित करता है जो भंडारण में प्याज सड़ने की प्रक्रिया की शरुआत करता है।

प्याज मक्खी छोटी घरमक्खी की तरह दिखती है जो गर्मियों की शुरुआत उड़ती हुई दिखाई देती है, यह अपने लम्बे सफेद अंडे पौधे या मिट्टी में पौधे के आधार पर देती है।

रोग

आर्द्र गलनः रोग के पूर्व – उद्भव की दशा में पौध मिट्टी की सतह तक पहुँचने से पहले ही मर जाती हैं। पौध के उद्भव में विफलता मुख्यतय बीज की खराब गुणवत्ता से होता है। पोस्ट उद्भव गलन द्वारा संक्रमित पोध मिट्टी से उभरने के बाद कभी भी गिर सकती है। यह आमतौर पर जमीन के स्तर पर या नीचे होती है और संक्रमित ऊतक नरम और पानी से लथपथ होते है। रोग के अग्रिम रूप में तना आधार में संकुचित और पौधे गिर जाते हैं। यह देखा गया है कि ज्यादातर हानि पूर्व उद्भव आर्द्र गलन के कारण होती है। यह खरीफ मौसम में जब तापमान और आर्द्रता उच्च रहती है, तब आम है।

स्टैमफीलीयम झुलसाः यह रोग उत्तरी और पूर्वी भारत में प्याज के पत्तों पर बहुत ही सामान्य हैं। रोग तीव्रता रबी फसल में 5 से 50 प्रतिशत तक होती है। संक्रमण देर मार्च और जल्दी–अप्रैल के दौरान होता है, लघु, पीली से नारंगी रंग के धब्बे या धारियाँ के पत्तियों या डंठल के बीच एक तरफ विकसित होते हैं। धब्बे अक्सर मिल कर बड़े धब्बों में बदल कर पत्तों पर झुलसा पैदा करते हैं। रोग पुष्पक्रम डंठल पर प्रदर्शित होने से बीज फसल को गंभीर नुकसान पहुँचता है।

बैंगनी ब्लाचः यह रोग खरीफ के मौसम में आम है। गर्म और आर्द्र जलवायु के साथ तापमान 21–300 सी. और सापेक्ष आर्द्रता 80–90 प्रतिशत रोग को बढ़ाती है।

रोग पत्तियों पर छोटे, सफेद, धसे घावों के रूप में प्रकट होता है। ये धब्बे बाद में बड़े होकर ओर अंततः पूरी पत्ती को घेर लेते हैं। बाद में अंडाकार आकार के काले क्षेत्र पतियों की सतह पर दिखाई देते हैं, विषेशतया बैंगनी रंग को बनाए रखते हैं। पत्तियां और तने धीरे–धीरे गिर जाते हैं। गाढे क्षेत्र घावों के भीतर विकसित हो सकते हैं।

प्याज पीला बौना रोगः यह एक वायरल रोग है जो यंत्रवत् प्रसार के साथ कीट वाहक द्वारा फैलता है। इस रोग से गंभीर संक्रमित पोधे स्तंभित, बोना और फूल डंठल मरोड़ जाते हैं। प्रभावित पत्तियां और तना सामान्य हरे से पीले रंग के विभिन्न रंगों में बदल जाती है, पत्तियां समतलन और कुंचित होकर मुड़ जाती हैं।

आइरिस पीला धब्बा वायरसः यह भारत में प्याज की बल्ब और बीज फसल में एक उभरती हुई बीमारी है। प्याज पर लक्षण पत्तियों और पुष्पदंड, पर हरिमाहीन धब्बे के रुप में प्रकट होते हैं जो बाद में फूल डंठल झुकने पर पीले और परिगलित धब्बो में बदल जाता है। अग्रिम अवस्था में एकल धुरी के आकार का हरिमाहीन घाव सम्मिलित होकर पत्तियों और पुष्पदंड को मुर्झा देते हैं जिससे बल्ब भी प्रभावित होता है। यह विषाणु थ्रिप्स के माध्यम से फैलता है। प्रभावित पौधों के पत्तों पर कई आँख के समान धब्बे दिखाई देते हैं।

पोषक तत्वों की कमी :

सल्फर की कमीः प्याज सल्फर प्रिय पौधा है और इसे उच्च सल्फर की आवश्यकता होती है। यह सल्फर की कमी के प्रति अतिसंवेदनशील जिसके परिणामस्वरूप टिप बर्नींग होती है। छोटी पत्तियों समान रूप से पीले रंग की होती हैं। पौधे के कमजोर, पतला, स्तंभित होने से विकास धीमा हो जाता है, और छोटा आकार, कम वजन और हल्के लाल का बल्ब बनता है। सल्फर की कमी प्याज से तीखापन प्रभावित होता है।

प्याज की फसल में समेकित नाशीजीव प्रबन्धन विधियाँ

नर्सरी अवस्था

- बुवाई से 15.20 दिन पहले 45 मिमी मोटी पारदर्शी पॉलिथीन शीट के साथ खेतों की मिट्टी सौरीकरण करें।
- पानी की अच्छी निकासी के लिये जमीनी सतह से 10 सेमी ऊपर नर्सरी की क्यारी बनायें।
- पौध की क्यारी में गोबर की खाद/वर्मीकम्पोस्ट से संवर्धित ट्राइकोडरमा 50 ग्रा. प्रति वर्गमीटर की दर से मिलायें।
- असंभावित वर्षा के कारण होने वाले पीलेपन को कम करने के लिए यूरिया का 0.2 प्रतिशत दर से आवश्यकता आधारित छिड़काव करें।

मुख्य फसल

- प्याज की थ्रिप्स के खिलाफ बाधा फसल के रूप में बाहरी पंक्ति में मक्का की बुवाई करें।
- रोपाई से पहले स्यूडोमोनास इनफ्लुओरिसेन्स 5 मिली प्रति लीटर का घोल में पौध को डुबायें।
- फसल मौसम के दौरान पर्याप्त सिंचाई करें क्योंकि निरंतर नमी के कारण मृदा में विद्यमान थ्रिप्स सड़ जाते

हैं।

- थ्रिप्स के प्रबंधन के लिए स्प्रिंकलर के द्वारा खेतों की सिंचाई करें।
- थ्रिप्स के प्रबंधन के लिए नीले रंग के ट्रैप्स 20 प्रति एकड़ की दर से स्थापित करें।
- थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए डायमिथिओएट 30 ईसी का 660 मिली या फिप्रोनिल 80 डब्ल्यूजी का 75 ग्रा या ओक्सीडेमेटोन मिथाईल 25 ईसी का 1.2 ली प्रति हे की दर 500 लीटर पानी के साथ छिडकाव करें। बल्ब बनने की प्रारंभिक अवस्था यानि रोपाई के 7 सप्ताह बाद या 50 दिन के पश्चात थ्रिप्स को नियंत्रण करना अत्यंत आवश्यक है।
- नीम की खली को सूत्रकृमि प्रबन्धन के लिये 250 किलो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से डाले।
- मृदुल आसिता व ब्लाईट से बचाव के लिए जिनेब 75 डब्ल्यूपी का 1.5–2.0 किग्रा प्रति हे. की दर से 750–1000 लीटर पानी के साथ आवश्यकता आधारित छिडकाव करें।
- बैंगनी ब्लाच के नियंत्रण के लिए डाईफेन्कोनजोल का 0.1 प्रतिशत, टेब्युक्युनाजोल 25.9 प्रतिशत एम. एम.
- ईसी का 625 मिली प्रति हे. की दर से 500 लीटर पानी के घोल में आवश्यकता आधारित छिड़काव करें।
- सल्फर की कमी दूर करने के लिए आवश्यकता आधारित सल्फर 80 डब्ल्यूपी का 2 प्रतिशत की दर से प्रयोग करें।

मित्र कीटों का संरक्षण

प्याज फसल प्रणाली में सामान्य रूप से दिखाई देने वाले मित्र कीटों की रक्षा की जानी चाहिए और इसके लिए रासायनिक नाशीजीवयों का अवांछित और अतिरिक्त छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए।

प्याज की सहिष्णु किस्में/मध्यम प्रतिरोधी किस्मों / संकर

नाशीजीव	सहिष्णु /मध्यम प्रतिरोधी किस्मों / संकर
थ्रिप्स	अरका कीर्तिमान, अरका लालिमा, अरका पीताम्बर, भीमा शक्ति, भीमा श्वेता, को. 2
बैंगनी ब्लाच	अरका कल्याणी, अरका कीर्तिमान, अरका लालिमा, अरका पीताम्बर, एन.अच.आर.डी. अफ.–लाल, को. 2

आम प्रवर्धन की उन्नत विधियां

कन्हैया सिंह, मनीष श्रीवास्तव, जय प्रकाश, अमित कुमार गोस्वामी, संजय कुमार सिंह एवं अंजली सोनी
फल एवं औद्यानिकी प्रौद्यौगिकी संभाग
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

प्रस्तावना

पुराने समय में आम का प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता था। परन्तु समय के साथ–साथ कायिक प्रवर्धन विधियों का उपयोग किया जाने लगा। आम की कुछ किस्मों में बहुभ्रूणीयता पायी जाती है जिससे बीजू पौधे भी मातृ पौधों के समान होते हैं। परन्तु आम की इस विषेषता का बहुत अधिक लाभ नहीं लिया जा सका। ज्यादातर क्षेत्रों में परम्परागत तौर पर नर्सरी में भेंट कलम बंधन विधि का उपयोग किया जा रहा है। पिछले कुछ दशकों में अनुसंधान कार्यों से पता चला कि वीनियर कलम बंधन विधि का उपयोग उत्तर तथा मध्य भारत में सफलता के साथ किया जा सकता है। साथ ही साथ समुद्र के किनारे के स्थानों जहॉ वातावरण में अधिक नमी तथा मध्यम तापमान होता है वहॉ प्रांकुर कलम बंधन विधि अत्यन्त उपयोगी है। वर्तमान में मृदु शाखा कलम बंधन विधि का उपयोग देश के उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में व्यावसायिक स्तर पर उपयोग में लाया जा रहा है साथ ही साथ पॉलीहाउस तथा छायागृहों के प्रयोग से आम प्रवर्धन का कार्य वर्ष के कई महीनों में किया जा सकता है । आज के परिवेश में इस बात की महती आवश्यकता है कि आम के बागवानों को प्रेरित किया जाए कि वो पौधों के प्रवर्धन की उन्नत तकनीकी से अवगत हों ।

मातृ पौधे का चयन

नर्सरी में मातृ पौधों का एक विषिष्ट स्थान होता है तथा नर्सरी की सफलता मातृ पौधों के स्वास्थ्य एवं ओज पर निर्भर करती है । अतः यह आवश्यक है कि अच्छी किस्म के अनुवांशिकी शुद्धता युक्त मातृ पौधों को नर्सरी में लगाया जाय।

> मातृ पौधे ओजस्वी, स्वस्थ तथा अधिक उपज देने वाले होने चाहिए । साथ ही उनमें नियमित फलन होना चाहिए।

- मातृ पौधों पर किसी प्रकार की बीमारी तथा कीटों का प्रकोप नहीं होना चाहिए।
- यह अत्यंत आवश्यक है कि मातृ पौधे अनुवांशिकी तौर पर शुद्ध तथा गुणवत्तायुक्त हों।
- मातृ पौधों की खरीद पंजीकृत फार्म, कृषि विश्वविद्यालयों अथवा राजकीय नर्सरी से करना चाहिए।
- क्रय रसीद को संभालकर रखना चाहिए जिससे मातृ पौधों की उत्पत्ति तथा प्रमाणिकता समय पर जाना जा सकता है।
- मातृ पौधों का चयन नर्सरी क्षेत्र में पौधों की मांग के अनुरूप होना चाहिए।

मातृ पौधों का रख–रखाव

नर्सरी की सफलता के लिए मातृ पौधों के साथ–साथ उनके रख–रखाव की भी महती आवश्यकता होती है। इसके लिए मातृ पौधों की नियमित अन्तराल पर सिंचाई, अवस्थानुसार पोषण प्रबंधन तथा कीट एवं रोग प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मातृ पौधों में फूल एवं फल अवस्था को नहीं आने देना चाहिए तथा पौधों को वानस्पतिक अवस्था में ही रखना चाहिए जिससे सांकुर शाखा प्राप्त की जा सके। इसके साथ मातृ पौधों के स्वास्थ्य का नियमित परीक्षण रोगाणुओं व अन्य गुप्त बीमारियों हेतु करने की व्यवस्था करनी चाहिए। मातृ पौधों की पैतृक वंषावली तथा फलन स्वभाव सम्बन्धित सूचनाएं भी रजिस्टर में नोट करके आफिस में रखना चाहिए ।

सांकुर शाखा का चयन

- सांकुर शाखा परिपक्व तथा कम से कम 4–5 माह पुरानी होनी चाहिए।
- सांकुर काष्ठ जिसका व्यास 0.6 से 1.2 सेंमी हो, अच्छी मानी जाती है।
- सांकुर शाखा पर स्वस्थ पूर्ण विकसित, गोल एवं

उभरी कलिकाएं होनी चाहिए ।

- गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन हेतु सांकुर शाखा हमेशा स्वस्थ एवं अच्छे पौधों से ही लेना चाहिए।
- सांकुर शाखा किसी भी प्रकार के जीवाणु, कवक एवं विषाणु जनित रोगों से मुक्त होना चाहिए।
- मूलवृन्तों पर कलम बांधने हेतु चयनित सांकुर शाखा सुषुप्तावस्था में होना चाहिए।
- सबसे अच्छी सांकुर शाखा पौधों के केन्द्रीय भाग या छत्रक के निचले भाग से प्राप्त होती है।

सांकुर शाखाओं का संग्रहण

सांकुर के लिए प्रमुख रूप से शीर्ष पर स्थित 4–5 माह आयु वाली शाखा जिसमें पुष्पन न हुआ हो अच्छी होती है । चयनित सांकुर शाखा को मातृ पौधे से अलग करने से पहले उन पर उपस्थित पत्तियों को पर्णवृन्त छोड़कर काट देते हैं इस क्रिया के 7–10 दिनों बाद सांकुर शाखा को मातृ पौधों से अलग कर कलम बंधन हेतु उपयोग में लाना चाहिए। अगर सांकुर शाखा को दूर स्थान पर भेजना हो तो उन्हें नम मॉस घास में लपेट कर रखना चाहिए ।

मूलवृन्त उगाना

सामान्य तौर पर आम में मूलवृन्त हेतु बीजू पौधों की गुठलियों का प्रयोग किया जाता है । जुलाई, अगस्त के महीनों में आस–पास उपस्थित बौनी, बीमारी मुक्त तथा अधिक उत्पादन देने वाले बीजू पौधों से फलों को प्राप्त कर उनसे गुठलियॉ निकालने के पश्चात् जल्द से जल्द उनकी बुआई की व्यवस्था करनी चाहिए। गुठलियों के भंण्डारण हेतु नमीयुक्त छायादार स्थान में गुठलियों को रखना चाहिए तथा गुठलियों को बालू, बुरादा एवं मिट्टी के मिश्रण से ढक देना चाहिए। गुठलियों की बुआई से पूर्व पानी में डुबोना चाहिए और जो गुठलियां पानी की सतह पर तैरती रह जाए उन्हें छांटकर निकाल देना चाहिए क्योंकि उनमें जीवन क्षमता समाप्त हो चुकी होती है। आम के फलों की बुवाई परिपक्वता के अनुसार मई से अगस्त महीने में की जाती है। इसके लिए गोबर की सड़ी खाद मिश्रित, उंची क्यारियों का प्रयोग किया जा सकता है। जब पौधों की आयु दो महीने की हो जाए तब उन्हें पॉलीहाउस में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। छोटे प्रत्यारोपित पौधों की सिंचाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। शुरूआती समय में पत्तियों को खाने वाले कीटों से छोटे पौधों को बचाना चाहिए। इन पौधों को 6–8 महीने तक बढ़ने देना चाहिए और जब तनें की मोटाई पेंसिल के बराबर हो जाए तो उनमें कलम बांधने का कार्य शुरू करना चाहिए।

मूलवृन्त का चयन

- मूलवृन्तों में उचित ओज एवं विकास होना चाहिए।
- मूलवृन्त मृदा जनित रोगों तथा कीटों के प्रतिरोधी होनी चाहिए।
- मूलवृन्तों को विषाक्त लवणों जैसे सोडियम, मैग्नीशियम तथा कैल्शियम के प्रति सहनशील होना चाहिए।
- मूलवृन्तों को विभिन्न प्रकार की सांकुर शाखाओं के साथ ससंगतता होनी चाहिए।
- मूलवृन्तों को आसानी से प्रवर्धित किया जा सकता हो।
- मूलवृन्तों को उत्परिवर्तित के प्रति संवेदनशील नहीं होना चाहिए।
- मूलवृन्तों की आयु 6 से 8 महीने होनी चाहिए। परन्तु किसी भी स्थिति में एक वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- मूलवृन्तों की मोटाई सामान्यतौर पर 1 सेंमी होनी चाहिए।

प्रवर्धन विधियां

विकास की अवस्था तथा प्रवर्धन के समय के अनुसार मूलवृन्तों का अधिकाधिक उपयोग निम्नलिखित प्रवर्धन विधि ायों से किया जा सकता है ।

वीनियर कलम बंधन

यह एक महत्वपूर्ण एवं आम प्रवर्धन की व्यावसायिक विधि थी परन्तु इसका प्रचलन अब धीरे–2 कम हो रहा है। यह एक आसान विधि है जिसमें अधिक सफलता मिलती है। आठ महीने से एक वर्ष आयु के मूलवृन्तों का उपयोग इस विधि में किया जाता है। इस विधि में मूलवृन्त को 20 सेंमी0 की ऊॅचाई से 4.5 सेंमी0 नीचे की तरफ तथा 0.5 सेंमी0 अन्दर की तरफ चीरा लगाते हैं । चीरे के आधार पर एक और छोटा चीरा लगाकर छाल के साथ लकड़ी को बाहर निकाल लेते हैं जिससे की सांकुर शाखा अच्छी प्रकार खॉच में सेट हो जाय। सांकुर शाखा जो 4–5 माह पुरानी हो उसके आधार पर एक तरफ तिरछा चीरा तथा

दूसरी तरफ एक सीधा चीरा लगाते हैं तथा उसको मूलवृन्त में बनाये गये चीरे में इस प्रकार प्रतिस्थापित करते हैं कि दोनों अच्छी प्रकार सेट जायें। इसके बाद 1.5 सेंमी0 चौड़ी तथा 200 गेज मोटी पॉलीथीन पट्टिका से कसकर बॉध देते हैं। इस विधि में भी सांकुर शाखा जो जिसकी मोटाई मूलवृन्त की मोटाई के समान हो उसके पत्तियों को 7–10 दिन पहले तोड़ दिया जाता है। मूलवृन्त तथा सांकुर शाखा का यूनियन 40–45 दिन में हो जाता है इसके बाद मूलवृन्त को बंधन के उपर से काट देते हैं ।

गुण

- यह एक आसान एवं लाभप्रद विधि है।
- इस विधि में सफलता ज्यादा मिलती है।
- स्व–स्थाने बाग लगाने के लिए यह विधि उपयुक्त है।

अवगुण

- इस विधि में पौधे काफी देर से तैयार होते हैं।
- इस विधि में कुषल माली की आवश्यकता होती है।

प्रांकुर कलम बंधन

प्रांकुर कलम बंधन एक ऐसी प्रवर्धन तकनीक है जिससे कम समय में अधिक से अधिक पौधे बनाए जा सकते हैं। इस विधि में काफी कम आयु का मूलवृन्त उपयोग में लाया जाता हैं। फलों से निकाली गई गुठलियों को नर्सरी की क्यारियों में बो देते हैं। अंकुरण के पश्चात् जब पौधे का रंग कॉपर के रंग का हो तब गुठली सहित पौधों को निकाल कर 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम कवकनाशी से 5 मिनट के लिए उपचारित करते हैं। इन पौधों के शीर्ष को 6–8 सेंमी0 ऊॅचाई पर काट देते हैं तथा प्रांकुर तने पर 2–3 सेंमी0 लम्बा चीरा तने के मध्य में लगाते हैं। साथ ही साथ 4–5 माह परिपक्व सांकुर शाखा को कलम की तरह कटाव करके प्रांकुर तने में लगे चीरे में प्रतिस्थापित करते हैं तथा कलम बंधन में प्रयोग में लाई जाने वाली पॉलीथीन की पट्टियों से कस कर बांध देते हैं। इन कलमी पौधों को पॉलीबैग जिसमें 1:1:1 अनुपात का पाटिंग मिश्रण भरा हो लगा देते हैं। पॉलीबैग में लगे पौधों को छायादार स्थान पर रखते हैं जिससे तेज वर्षा या गर्मी से बचाया जा सके। जब सांकुर शाखा में फुटाव होने लगता है तथा नई निकली पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है तब पॉलीथीन की पट्टियों को निकाल देते हैं। इन सभी प्रक्रियाओं में 45–50 दिन का समय लग जाता है। मूलवृन्त से निकलने वाले फुटाव को अविलम्ब तोड़ देना चाहिए । इस विधि के लिए जून का महीना अच्छा होता है। यदि गुठलियों की उपलब्धता सुनिश्चित हो तो इस विधि का प्रयोग अगस्त माह के प्रथम सप्ताह तक भी किया जा सकता है।

गुण

- आर्थिक दृष्टिकोण से इस विधि में कम लागत लगती है, क्योंकि मूलवृन्तों को वर्ष भर के रख–रखाव की आवश्यकता नहीं होती है।
- इस विधि में कम समय में पौधे तैयार किए जा सकते हैं।
- पौधों की जल्द आपूर्ति की जा सकती है।

अवगुण

- प्रवर्धन हेतु कुशल मालियों की आवश्यकता होती है।
- चूंकि लगभग दो सप्ताह के मूलवृन्तों का इस विधि में प्रयोग होने के कारण एक साथ अधिक संख्या में पौधे तैयार करने में कठिनाई होती है ।
- मूलवृन्तों की आयु अधिक होने पर सफलता कम हो जाती है।

मृदु शाखा कलम बंधन

यह प्रवर्धन विधि विभिन्न क्षेत्रों में व्यावसायिक स्तर पर अपनाई जा रही है। कलम बंधन हेतु 6–10 माह के मूलवृन्तों का उपयोग किया जाता है । अन्य विधियों की तरह इस विधि में भी सांकुर शाखा जिनकी मोटाई मूलवृन्त की मोटाई के समान हो उनके पत्तियों को 7–10 दिन पहले काट दिया जाता है । इस विधि में सांकुर शाखा के निचले भाग के पच्चर के आकार में काटते हैं तथा मूलवृन्त में 3–0–4.5 सेंमी0 लम्बा चीरा लगाते हैं । सांकुर शाखा को मूलवृन्त में प्रतिस्थापित करके 1.5 सेंमी0 चौड़ी 200 गेज मोटी पॉलीथीन पट्टिका से कसकर बांध देते हैं । इस विधि की सफलता अधिक आर्द्रता तथा मध्यम तापमान वाले वातावरण (जुलाई से सितम्बर) में अधिक होती है ।

गुण

- अधिक सफलता के साथ आसान विधि ।
- कम समय में अधिक कलम बांधे जा सकते हैं ।
- यह एक व्यावसायिक प्रवर्धन विधि है ।

अवगुण

- इस विधि में कौशल की आवष्यकता होती है ।
- कुछ किस्में जैसे हिमसागर में इस विधि से प्रवर्धन करने पर कम सफलता देखी गई है ।

पौधों की देखभाल

पॉलीबैग में लगाए गए नये पौधे कीटों, बीमारियों तथ खरपतवारों से मुक्त होने चाहिए। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में सूर्य के प्रकाश की तीव्रता कभी–कभी नर्सरी में लगे नये पौधों के लिए हानिकारक हो सकता है। मुख्य रूप से ऐसे दोनों क्षेत्रों में मार्च के अन्त से अप्रैल माह में नये पौधों को नुकसान पहुंचता है। इससे बचाव हेतु पौधों के उपर छाया की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए पुआल, पॉलीथीन तथा छायादार जाली का उपयोग किया जा सकता है। साथ ही साथ फरवरी माह से लेकर मानसून के आगमन तक नये पौधों की सिंचाई 4–6 दिनों के नियमित अन्तराल पर करनी चाहिए । कलमी पौधों को साफ स्वच्छ स्थान पर रखना चाहिए और नियमित अन्तराल पर नयी कलिकाओं के निकलने तथा वृद्धि हेतु निरीक्षण करना चाहिए । जब कलम मिलन अच्छी तरह से हो जाए तो पॉलीथीन की पट्टियों को निकाल देना चाहिए जिससे कलमी पौधों में वृद्धि तथा विकास अच्छी प्रकार से हो सके। कलम मिलान भाग के नीचे से प्रस्फुटित होने वाली कलिकाओं को तोड़ देने से कलमी पौधों के वृद्धि में लाभ होता है।

तालिका : आम कलम बंधन के लिए मानक

क्रम सं0	प्रवर्धन विधि	प्रांकुर कलम बंधन	मृदुशाखा कलम बंधन	वीनियर कलम बंधन
1	मूलवृन्त स्थित	सीधी तथा ओजस्वी	सीधी तथा ओजस्वी वृद्धि	सीधी तथा ओजस्वी
2	मूलवृन्त उगना	पॉलीथीन बैग	पॉलीथीन बैग	पॉलीथीन बैग
3	पॉलीथीन का आकार	20X10सेंमी / 10X25सेंमी	20X10सेंमी / 10X5 सेंमी	20X10सेंमी / 10X5 सेंमी
5	मूलवृन्त की आयु	10 से 15 दिन	7–10 माह	3–5 माह
6	मूलवृन्त का व्यास	0.2–0.3 सेंमी0	0.5–0.7 सेंमी0	0.5–0.7 सेंमी0
7	सांकुर शाखा की आयु	3–4 माह पुरानी	3–4 माह पुरानी	3–5 माह पुरानी
8	सांकुर शाखा की मोटाई	0.3–0.4 सेंमी0	0.5 –0.7 सेंमी0	0.5 –0.7 सेंमी0
9	सांकुर शाखा की लम्बाई	10–15 सेंमी0	10–15 सेंमी0	15–18 सेंमी0
10	पौधे की उंचाई	20 सेंमी0	60–65सेंमी0	60–70सेंमी0
11	तने की मोटाई	1.5–2.0 सेंमी0	2.5–3.0 सेंमी0	2.5–3.0 सेंमी0
12	कलम मिलन की उंचाई	5–7 सेंमी0	20–26 सेंमी0	30–40 सेंमी0
13	कलम बंधन का समय	जून – अगस्त	मई – सितम्बर	मई – सितम्बर
14	मिलान परिपक्वता का समय	40–50 दिन	45–50 दिन	55–65 दिन

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क ₹ 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,